द्रयोग

गयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

प्रकाशन तिथि : 01.07.2020

मूल्य – एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 360/-

अमृतकण

नादत्ते कश्चित् पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ते जन्तवः।।

सर्व व्यापक परमात्मा न पाप ग्रहण करता है और न पुण्य। अतः जीवों का कर्मबन्धन केवल अज्ञानमात्र है, जिसके कारण सभी जीव अपने को मोहमाया में फँसा मानते हैं।

◆ ◆ ◆

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचार संयोगः सदाचारस्य लक्षणम्।।

([illegible])

अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अतः विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

◆ ◆ ◆

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/23)

जिसकी परमात्मा में उत्तम भक्ति है और परमात्मा के समान ही अपने गुरु में भक्ति है, उस महात्मा को सभी पदार्थ स्पष्ट हो जाते हैं।

◆ ◆ ◆

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

(ब्रह्मखण्ड 16/51)

पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से ही दैन्य, दुःख तथा भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 53 जून-जुलाई 2020 अंक : 3-4

अग्ने ! नय सुपथा राये

अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयो ध्यस्मज्जुहुराहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम।।

अर्थात् - हे अग्निदेव ! मेरे सर्वज्ञ भगवान् ! हमें अपना ऐश्वर्य देने के लिए सुपथ से ले चलो ! आप उन समस्त कर्मों तथा प्रणीतियों को जानते हैं जिन पर चलने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है। हमारे अन्दर से कुटिलता रूप पाप को हटा दो जिससे हम बार-बार आपके चरणों में प्रणत हो सकें आपका सामीप्य प्राप्त कर सकें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	10
3.	**कोरोना वाइरस-एक वैश्विक संत्रास**- आचार्य दास लाल	14
4.	**श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा**- डॉ. विजय सिंह	16
5.	**संसार-रचना के पीछे उद्देश्य**- डॉ. श्री ऋषिराम शर्मा	20
6.	**योगेश्वर चरित्र माला**- अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	27
7.	**मन-इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा को प्राप्त करें**- श्री जयदयाल	29
8.	**सोई जानई जेहि देहु जनाई....(1)**- जगदीश राए बंसल	32
9.	**गुरुदेव से ही प्रकाश, मार्ग और सहारा मिलता है**- ब्र. ओमप्रकाश	35
10.	**योगमायासमावृतः**	40
11.	**गुरु-शिष्य एकात्मत्व**- सौ. कविता शर्मा	42
12.	**श्रद्धा और विश्वास-एक अनिवार्यता**- श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा	45
13.	**कबीर और योग**- ब्र. बृजमोहन वाशिष्ठ	48
14.	**भक्ति**- श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका	52

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

योगी की अचिंत्य शक्ति

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

उपरोक्त लेख के विषयानुसार योगी की शक्ति का वर्णन करना सहज वस्तु नहीं है, किन्तु फिर भी पाठकों की योग जिज्ञासा बढ़े, इस बात को दृष्टि में रखते हुए मैंने इस लेख में योगी की क्या ताकत हुआ करती है उस पर यत्किञ्चित प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण जी ने श्रीमद्‌भगवद् गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का परिचय देते हुए निम्नांकित श्लोक में कहा है जिसको पढ़कर के हर व्यक्ति यह समझ सकेगा कि योगी की सीमा कहाँ तक है:-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः।। *(गीता 6/8)*

अर्थात् युक्त योगी वह कहलाता है जिसका हृदय ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हो चुका हो और जिसने विकार रहित स्थिति उपलब्ध कर ली है। जिसके लिये लोहा, पत्थर, सोना सब एक समान है। ऐसा योगी युक्त योगी कहलाता है। ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ करके संयमी विधि से उन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने वाला योगी ज्ञान तृप्तात्मा एवं जिसने पूर्ण आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। और कभी भी जिसको कामादि नहीं सताते हैं अर्थात् विकार वाली स्थिति से आगे निकल जाता है ऐसा योगी युक्त योगी कहलाता है। श्लोक के अर्थानुसार योगियों के इस प्रकार के इतिहास मिलते हैं, जिन्होंने पूर्णता को पाकर के लोहा, सोना, पत्थर और मिट्टी को बराबर समझा। श्री गोरखनाथ जी का वह उदाहरण यहाँ पर परिपूर्ण से लागू होता है। जबकि वह अपने गुरुदेव को संगलद्वीप से ले आने के लिये छद्म वेष से संगलद्वीप गये और अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ को साथ लौटा लाये थे। जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी संगलद्वीप से श्री गोरखनाथ जी की प्रेरणानुसार चले थे तो उन्होंने कुछ अर्थाभाव को दूर करने की इच्छा से दो सोने की ईंटें अपने साथ रख ली थीं, जिसके परिणामस्वरुप वह हर समय चिन्तित रहा करते थे कि इनको कोई चुरा न ले जाये किन्तु जिस समय श्री गोरखनाथ जी ने इस रहस्य को जाना तो उन्होंने वह दोनों सोने की ईंटें उठाकर कुएँ में डाल दीं और आगे को चल पड़े। थोड़ा समय व्यतीत हो जाने के बाद मार्ग चलते हुए जिस समय श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपनी सोने की ईंटों को नहीं पाया तो वह बड़े

क्लेषित हुए। श्री गोरखनाथ ने अपने गुरुदेव के मन की चिन्ता को जानकर हँसकर कहा, गुरुदेव आप क्यों चिन्तित हैं, उन्होंने सत्य–सत्य कारण बतला दिया, इस पर श्री गोरखनाथ जी हँसे और अपने गुरुदेव श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी से बोले–''महाराज आप सोने की दो ईंटों की क्यों चिन्ता करते हैं, यह देखो यह पत्थर सोने का है। यह कहकर उन्होंने एक बड़ी भारी चट्टान पर मूत्र त्याग किया तो वह सारी चट्टान तत्क्षण सोने की बन गई। इस आश्चर्य को देखकर मत्स्येन्द्रनाथ समझ गये कि गोरखनाथ की कितनी बड़ी शक्ति है। योगी जिस समय षट्चक्रों पर संयम करता हुआ चलता है वह मणिपूरक चक्र में पहुँचता है और वहाँ संयम करता है तो उस चक्र के ध्यान का जो फल मिलता है उसका वर्णन भगवान शिव ने 'शिव संहिता' में इस प्रकार किया है–

तस्मिन् ध्यानं सदा, योगी करोति मणिपूरके।
तस्य पाताल सिद्धि:, स्यान्निरन्तर सुखावहा।।
ईप्सितं च भवेल्लोके, दु:ख रोग विनाशनम्।
कालस्य ववंचनं चापि, परदेह प्रवेशनम्।।
जाम्बूनदादि करुणं, सिद्धानां दर्शन भवेत्।
औषधि दर्शनं चापि, निधिनां दर्शन भवेत्।।

अर्थात् उस पवित्र मणिपूरक चक्र में जो योगी ध्यान करता है, उसको पाताल सिद्धि अर्थात् पाताल प्रवेश करने की ताकत प्राप्त हो जाती है और संसार के रहते हुए जिस कामना की वह चिन्ता करता है वह ईप्सित पदार्थ उसको अवश्य प्राप्त होता है। उसके सब प्रकार के दु:खों का स्वाभाविक नाश हो जाता है, अर्थात् उस योगी पर काल का अधिकार नहीं रहता। परदेह में प्रवेश करना और दिव्य औषधियों का ज्ञान, निधि दर्शन और सोना बनाने की ताकत उसको सहज भाव से प्राप्त होती है। यदि वह योगी शीघ्र संकल्प करे तो जहाँ पर मिट्टी या पत्थर पर मूत्रोत्सर्ग करेगा तो वह पत्थर–आदि अवश्य सोना बन जायेगा। अत: अपने गुरुदेव मत्स्येन्द्रनाथ को भ्रमित समझकर अपनी इस विपुल शक्ति का प्रयोगात्मक रूप श्री गोरखनाथ जी ने तत्काल करके दिखा दिया। योगी की कितनी बड़ी सामर्थ्य होती है इसका योगदर्शन के एक सूत्र में बहुत बड़ा संकेत है। जहाँ पर योगदर्शन के विभूतिपाद में समाधि प्राप्ति के उपाय बतलाये गये हैं। वहाँ पर ''ईश्वर प्राणिधानाद्वा'' अर्थात् ईश्वर के आत्म निवेदन करने से भी मनुष्य को सच्ची जिज्ञासा के साथ समाधि अवश्य प्राप्त होती है। जब इस सूत्र की रचना भगवान पतञ्जलिदेव ने की तो उस समय पातंञ्जलि सिद्धान्त को समझने वाले सभी जिज्ञासुओं को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उन्होंने तत्काल सवाल कर दिया–

प्रधानपुरुष व्यतिरिक्त: कोऽयमीश्वरो नामेति।

अर्थात् अभी तक तो योगदर्शन में प्रकृति और पुरुष का ही वर्णन था और प्रकृति पुरुष विवेक ही योगदर्शन का उच्चतम लक्ष्य था। किन्तु यहाँ पर समाधि प्राप्ति के लिये ईश्वर भक्ति भी एक साधन है। यह सुनकर उसको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उसने बड़ी जल्दी यह कह दिया कि प्रकृति पुरुष से न्यारी यह ईश्वर नाम की तीसरी वस्तु कौन है तो भगवान पतञ्जलि देव ने जवाब दिया।

क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

अर्थात् जो कभी भी कर्म विशेष विपाक आदि से छुआ नहीं गया है, उस ही पुरुष विशेष का नाम ईश्वर है। सुनने वाले जिज्ञासु ने उसी समय कहा ठीक है–

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति च बहवः केवलिनः।

जिज्ञासु ने कहा–बहुत से कैवली लोग इस प्रकार के हैं जो विविध प्रकार की साधना करते हुए कैवल्य लाभ कर चुके हैं और उनके अन्दर भी कोई कर्म विशेष विपाकादि नहीं है। इसीलिये वह सभी ईश्वर हैं। इसके उत्तर में पतञ्जलि देव योगदर्शन पर भाष्य लिखने वाले भगवान व्यासदेव ने अपना यह कहकर पीछा छुड़ाया कि भाई बात तो तुम्हारी ठीक है किन्तु एक अन्तर अवश्य है–

तेहित्रीणि बन्धनानि छित्वा कैवल्यं प्राप्ताः
ईश्वरस्य च तत्सम्बन्धी, न भूतो न भावी।

अर्थात् ये सारे के सारे कैवली लोग तीन बन्धनों को काटकर कैवल्य को प्राप्त हुए और ईश्वर कभी तीनों बन्धनों के अन्दर न कभी था और न आगे होगा। इस प्रकार से योगी की उत्कृष्ट ताकत का अनुमान स्पष्टतया लगाया जा सकता है कि योगी पूर्णरूपेण ईश्वरीय ताकतों से परिपूर्ण हो जाता है और उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रहती। यदि ईश्वर में और उसमें कोई भेद मान लिया जाये तो वह केवल मात्र इतना ही रहेगा कि यह साधन करके उस कोटि को प्राप्त हुआ है बाकी क्लेश कर्म आदि उसके उसी प्रकार छूट गये हैं जिस प्रकार ईश्वर के अन्दर कर्म विपाक आदि नहीं हुआ करते हैं। जिस प्रकार घड़े में रहने वाले आकाश को लोग तब तक घटाकाश कहते हैं जब तक घड़ा टूट कर वह आकाश महा–आकाश का रूप धारण नहीं कर लेता।

उपनिषदों में योगी की अद्‌भुत शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

अचिन्त्य शक्तिमान्योगी नानारूपाणि धारयेत।
संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।
नासौ मरण माप्नोति पुनर्योग बलेन तु।
हठेन मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुतः।
मरणं यत्र सर्वेषां तत्रासौ परिजीवति।
यत्र जीवन्ति मूढ़ास्तु तत्रासौ मृत एव वै।।

कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।
जीवन्मुक्तः सदा सदा स्वच्छः सर्वदोष विवर्जितः।।

अर्थात्, जिस योगी ने सम्प्रज्ञात योग की भूमिकाओं में संयम करते हुए अपने मन पर पूर्णरूपेण वशीकार प्राप्त कर लिया है उसकी शक्ति अचिन्तय हो जाती है। वह चाहे तो हजारों शरीर एक साथ धारण कर ले और फिर उनका संहार भी कर ले। जिसने अपने आपको हठयोग की साधना के द्वारा मार लिया है वह योगी अमर हो जाता है। जहाँ पर संसार के प्राणियों की मृत्यु होती है वहाँ पर वह अमर रहता है और जहाँ जिन विषयों के अन्दर ये लोग जिन्दा रहते हैं उन विषयों को वह छूता तक नहीं, उन सब में वह मृत की तरह रहता है। क्योंकि उसने अपने आप पर पूर्ण वशीकार प्राप्त कर लिया है। इसलिये इच्छा रूप होकर के तीनों लोकों में जहाँ–तहाँ विचरा करता है। उपरोक्त श्लोक के अन्दर योगी की शक्ति का बहुत बड़ा वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से जगदात्मा अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण जी ने श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध में उद्धव को उपदेश देते हुए अपनी अष्टादश सिद्धियों का वर्णन किया है, जो अन्तरमुख वाले को ही धारणा ध्यान के प्रभाव से प्रगट हुआ करती हैं। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण से उद्धव ने प्रश्न किया–

कया धारणा कास्वित, कथम्वित सिद्धिरच्युत।
कतिवा सिद्धयो ब्रु हिं, योगिनां सिद्धिदो भवान्।।

अर्थात्, सर्वशक्तिमान सिद्धियाँ कितने प्रकार की हैं और किस धारणा से वह किस प्रकार प्राप्त की जाती हैं। आप योगियों को सिद्धियों को देने वाले हैं। कृपा करके उन सिद्धियों के नाम व गुण बतलाइये। इसके उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी अष्टादश सिद्धियों का स्वरूप बतलाया जिसमें से आठ प्रमुख हैं वे इस प्रकार हैं–

सिद्धियोऽष्टादश प्रोक्ता, धारणा योगपारगैः।
तासामष्टौ मत्प्रधाना, दशैव गुण हेतवः।।

अर्थात्, ध्यान योग के वेत्ता योगिराज लोगों ने सिद्धियाँ अठारह प्रकार की बतलाई जिसमें आठ मुझसे सम्बन्ध रखने वाली हैं और दस गुणों से पैदा होने वाली हैं।

आठ महा सिद्धियाँ जो प्रकृति के विश्लेषणों पर अधिकार प्राप्त करने वाले योगियों को भगवान् के निज स्वरूप में तदरूपता प्राप्त करने पर होती हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है–

आठ महासिद्धियाँ

अणिमा महिमा भूर्ते, लघिमा प्राप्तिरेन्द्रियैः।
प्राकम्यं श्रुतदृष्टेषु, शक्ति प्रेरणमीशिता।।
गुणेष्वंसङ्गो वशिता यत्कमस्त दवस्यति।
एता से सिद्धयः सौम्य अष्टौयौत्पत्तिकामता:।।

अर्थात् अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वसित्व, यत्रकामावसायत्व ये आठ महासिद्धियाँ हैं। इसके स्वरूप को इस प्रकार समझ लेना चाहिये।

अणिमा–योगी का अणु के समान बहुत ही सूक्ष्म हो जाना।

महिमा–बड़ा हो जाना।

लघिमा–रुई के समान हल्का होना।

प्राप्ति–सब प्रकार की पहुँच अर्थात् योगी चाहे तो अपनी अंगुली के अग्रभाग से पृथ्वी से चन्द्रमा को छू सकता है।

प्राकाम्य–यद्रिच्छागति, अर्थात् जिस प्रकार सर्वसाधारण मनुष्य पानी में अनायास प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार योगी चाहे तो पृथ्वी में प्रवेश कर सकता है।

वसित्व–प्राणीमात्र पर पूर्ण वशीकार प्राप्त करना।

ईशत्व–हुकूमत करना या मालिक होना।

यत्रकामावसायत्व–सत्य संकल्प होना, जो विकार मन में आ जाये उसका ही यथार्थपूर्वक होना।

ये योगियों की आठ महा सिद्धियाँ हैं जो दृढ़तर अभ्यास करने वाले योगिराज लोगों को ही प्राप्त हुआ करती हैं। समय–समय पर योगियों के इतिहास में इन्हीं सभी सिद्धियों का आविर्भाव पूर्णरूपेण दिखलाई देता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि अष्ट महासिद्धियाँ हर समय वास किया करती हैं और उनके जीवन में स्थान–स्थान पर उनकी चमत्कारिक घटनाओं में यह बिल्कुल स्पष्ट उनकी आत्मशक्तियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कई स्थानों पर वह अन्तर्धान हुए, रासलीला के प्रकरण में गोपियों के अन्दर अभिमान पैदा हो जाने पर तत्काल वहाँ के वहाँ ही अन्तर्धान हो जाना। उनके योग ऐश्वर्य का परिचायक है। तृणावर्त्त के मारने के समय रुई के मानिन्द हल्का होकर उसके साथ आकाश में जाना और फिर उसके बाद पत्थर के समान भारी होकर जमीन पर आना यह उनके लघुत्व एवं गुरुत्व का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार से पाताल आदि लोकों से अपने गुरुदेव के मरे हुए पुत्रों को लाकर देना, यह उनका स्पष्ट प्राकाम्य का प्रभाव है। ईशत्व और वशित्व तो उनके जीवन में प्रतिक्षण बनी ही रही है। इसके अतिरिक्त गुण–धर्मों से पैदा होने वाली दस उपसिद्धियों का वर्णन भी भगवान ने अपने मुखारविन्द से किया है। वह इस प्रकार है–

दस उपसिद्धियाँ

अनूर्मिमत्वं देहेऽस्मिन, दूरश्रवण दर्शनम्।
मनोजवः–कामरूपं, परकाय प्रवेशनम्।।
स्वच्छन्द मृत्युर्देवानां, सहक्रीड़ानुदर्शनम्।

यथा संकल्प सं सिद्धि, राज्ञाप्रतिहता गतिः।।
त्रिकालज्ञत्व मद्वन्द्वं, परिचित्ताधभिज्ञता।।
अग्न्यकम्बुविषादीनां, प्रतिष्टम्भोऽपराजयः।।

इसके अतिरिक्त और भी सिद्धियाँ हैं जो विविध प्रकार के संयमों से मनुष्यों को प्राप्त होती हैं।

अनूर्मिमत्वं—भूख, प्यास आदि के वेगों का न होना।

दूरश्रवण दूरदर्शनम्—दूर की बातें सुनना व दूर तक देखना।

मनोजवित्व—मन के वेग वाला बनना। एक योगी का मन जहाँ जाये तत्काल उसका शरीर वहीं पहुँच जाये, इसको मनोजविता कहते हैं। अर्थात् मन के वेग से पहुँचना। जिस प्रकार हस्तिनापुर में द्रौपदी के चिन्तन मात्र से भगवान श्रीकृष्ण का द्वारका से पहुँचना और उनके वस्त्र को बढ़ाना। दुर्वासा के वन में जाने पर और उनके आतिथ्य के लिये द्रौपदी का श्रीकृष्ण का चिन्तन करना और तत्काल श्रीकृष्ण का वहाँ पहुँच जाना। यह सब मनोजविता के ही उदाहरण हैं।

कामरूपं—जैसा मन चाहे उसी प्रकार का रूप धारण कर लेना।

परकायप्रवेशनम्—दूसरे के शरीर में घुस जाना। जिस प्रकार से मुण्डन मिश्र के साथ श्रीनगर में शास्त्रार्थ करने पर विधाधरि से परास्त होकर के श्री शंकराचार्य जी छः महीने का अवसर लेकर किसी राजा के शरीर में जाकर घुस गये थे और छः महीने बाद उसको परास्त किया।

स्वच्छन्द मृत्यु—अपनी इच्छानुसार मृत्यु ग्रहण करना, अर्थात् जब तक योगी चाहे जीवित रहे।

देवानाम् सहक्रीड़ा दर्शनम्—देवताओं की अप्सराओं के साथ होने वाली हास–विलास आदि क्रीड़ाओं को अनावर्ण देखना।

संकल्प सिद्धि—जैसा सोचे वैसा ही हो जाना।

आज्ञाप्रति हतागति—सब जगह हुकूमत करना।

यह दस सिद्धियाँ सतोगुण से होने वाली हैं। इनका सम्बन्ध सतोगुण से है। इसके अतिरिक्त—

त्रिकालज्ञत्व—अर्थात् तीन काल की बातों को जानना।

अद्वन्द—सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि द्वन्द्वों के वश में न होना।

परिचित्ताद्यभिज्ञता—दूसरे के चित्त की बातों को जानना।

अग्न्यकम्बु विषादीनांप्रतिष्टम्भ—अग्नि, सूर्य, जल और विष आदि का योगी के शरीर पर किसी प्रकार का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ना।

अपराजय—किसी से भी पराजित न होना।

ये पाँचों सिद्धियाँ भी योगियों को अपने योगध्यान से प्राप्त हुआ करती हैं। जितनी सिद्धियों का वर्णन योगदर्शन, श्रीमद्भागवत् में, उपनिषदों में, या योगवशिष्ठ आदि में मिलता है वो सब उनका अपना ऐश्वर्य है। मेरे श्री गुरुदेव जी महाराज अपने मुखारविन्द से हिमालय के सिद्धों की आश्चर्यजनक कथायें सुनाया करते थे, जिनको सुनकर आजकल के समय का मनुष्य आश्चर्यचकित हो जायेगा और गप्प कहकर छोड़ देगा। किन्तु ऐसी बात नहीं है। हमारे पूज्य बुजुर्गों ने मेरे श्री गुरुदेव जी ने एक बार जिक्र करते हुए बतलाया कि हिमालय के अन्दर इस प्रकार के उच्चकोटि के महात्मा हैं जिन्होंने रोम–कूपों से हजारों स्त्री–पुरुषों की रचना कर ली। बड़े–बड़े महल व बँगले बना लिये। मालूम पड़ने लगा यह एक नया लोक बसा है। किन्तु उन्होंने फिर निज निर्मित सृष्टि का संहार करना चाहा तो एक बार स्वर–श्वासों का आकर्षण किया और वह सारी दृष्टि उन्हीं में विलीन हो गई। यदि आधुनिक समय में इन सब बातों को लोगों के मध्य में प्रचारार्थ बताया जाये तो गप्प कहकर छोड़ देने के अतिरिक्त तीसरी चीज नहीं होगी। किन्तु बात इस प्रकार की नहीं है, हमारा पुराना इतिहास इस प्रकार के उपाख्यानों की पूरी–पूरी गवाही देता है। त्रिशंकु का इतिहास आप लोगों ने सुना ही होगा, महाराज त्रिशंकु के निमित्त विश्वामित्र को नये स्वर्ग की रचना करना, इसी प्रकार की घटनाओं का ज्वलन्त उदाहरण है।

संतों की प्रत्येक चेष्टा लोककल्याण के लिये होती है!

श्री वसुदेवजी कहते हैं—

भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम्।
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम्।।
भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम्।।

(श्रीमद्भागवत 11/2/4–5)

हे देवर्षे! जैसे माता–पिता का शुभागमन बालकों के हित के लिये और भगवान् की ओर चलने वाले सन्तों का शुभागमन तापतप्त प्राणियों के हित के लिये होता है। वैसे ही आपका शुभागमन समस्त प्राणियों के परम कल्याण के लिये है। देवताओं के आचरण कभी प्राणियों के सुख के लिये होते हैं तो कभी दुःख के लिये भी हो जाते हैं। परन्तु जो आपके–जैसे महात्मा हैं, उनकी तो प्रत्येक चेष्टा ही प्राणियों के सुख के लिए होती है।

सम्पादकीय–

परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

–योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं–जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असंभव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर, योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर, उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ

योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इस से धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ, शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुतः योग ही शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची–ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं। वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का प्रचार–प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ–साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाली हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे–धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगीराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्रायः होता देखकर बीसवीं शताब्दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास–श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। **''कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्''** की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्यः प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का हृदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत–प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी शृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैंकड़ों योग शाखायें देश-विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी के अप्रतिम योग प्रभाव को स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदाशिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वतः ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस समय में बहुत से तान्त्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते-घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरशः सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आपकी निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातःकाल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुनः मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ-साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार की प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण

बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन श्री महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती है। 'सिद्धयोग' की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में 31 मार्च, 1 व 2 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

शक्तिचालिनी मुद्रा

शक्तिचालन मुद्रेयं सर्वशक्ति प्रदायिनी।।

सिद्धासन से बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों को मूलाधार में जोर से दबावे, ठोड़ी हृदय में लगाकर जो से श्वास–प्रश्वास करे ताकि पेट की अंतड़ियों के दबाव व ढीला होने का प्रभाव मणिपुर–चक्र पर पड़े और उसी के साथ गुदा संकोचन–खोलन करे, इससे मूलाधार की अपान वायु की टक्कर मणिपुर की प्राणवायु पर पड़ने से सुप्त कुण्डलिनी जागृत होती है। इसका अभ्यास योगी को जितेन्द्रिय होकर लवण, खट्टा, तीखा वर्जित परिमित भोजन अथवा दुग्धपान करके काम, क्रोध, मोह, अहंकार रहित, त्यागवान होकर प्रतिदिन कम से कम चार घड़ीपर्यन्त करने से सुप्त कुण्डलिनी के चलायमान होने में सहायता मिलती है। सद्गुरु का निर्देश भी लेते रहें।

कारोना वाइरस—एक वैश्विक संत्रास

आचार्य दासलाल जी महाराज

हम सभी जानते हैं कि सारे विश्व में कोरोना नामक महामारी का दौर चल रहा है। दुनिया से करीब साढ़े तीन लाख व्यक्ति इस बीमारी से अपना जीवन खो चुके हैं। हर व्यक्ति को इस संक्रमण का भय बना हुआ है। यह लाइलाज बीमारी है। अभी तक इसकी कोई दवा नहीं खोजी जा सकी है। सरकार ने ढाई माह तक लॉक डाउन रखा। हर व्यक्ति को घर के अन्दर ही बने रहने की हिदायत दी गई क्योंकि यह भयंकर छूत की बीमारी है तुरन्त एक दूसरे से संक्रमित हो जाता है। इस कारण से लोगों का बाहर आवागमन रोक दिया गया। संक्रमण के भय से सब कुछ बन्द करा दिया गया। फैक्ट्रियाँ बन्द हो गई। मजदूर अपने घर को जाने को मजबूर हुआ किन्तु जाये तो कैसे जाये। रेल यातायात, बस, टैक्सी, प्राइवेट वाहन सभी पर रोक लगा दी गई। मजदूर पैदल ही बाल–बच्चों के साथ हजारों मील पैदल चलने को मजबूर हुआ। वैशाख, ज्येष्ठ की गर्मी भूख–प्यास से व्याकुल हजारों मजदूर सैकड़ों मील पैदल ही चलते देखे जा सकते थे। रास्ते में जहाँ–तहाँ खाने की थोड़ी बहुत व्यवस्था तो थी किन्तु पूरा परिवार व टोली की टोली अपने गन्तव्य की ओर जा रही थी, ऐसे में भोजन आदि की व्यवस्था में कमी तो स्वाभाविक ही थी। गन्तव्य तक पहुँचने में इन लोगों को महीनों लग गये। इस महामारी के कारण हर व्यक्ति की जो दुर्दशा हुई शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। देश–दुनिया की अर्थव्यवस्था चौपट हो गई। गरीबी चारों ओर अपना पैर पसारने लगी है। खाने–पीने की वस्तु भी मिलनी दुर्लभ हो गई। मनुष्य विवश हो गया उसे अपनी औकात का, विवशता का ज्ञान हुआ। क्योंकि अब जीवन असामान्य हो गया है। पहले जैसा जीवन नहीं रहा मनुष्य का।

सोच बदल गई है। व्यर्थ का फैशन, आडम्बर, फिजूलखर्ची पर लगाम लग गया है। व्यक्ति सीमित साधनों में ही जीना सीख रहा है। मनुष्य की स्वतन्त्रता छिन गई है। आहार–विहार, उठना–बैठना भी सावधानीपूर्वक ही हो रहा है। व्यक्ति का 2 गज की दूरी रखना आवश्यक हो गया है। मुँह पर मास्क घर से निकलते ही लगाना आवश्यक है। पूजा–स्थल, मन्दिर आदि तो खुल गये हैं किन्तु बहुत सारी शर्तों का पालन करना होता है। भगवान् को प्रसाद चढ़ाना भी वर्जित कर दिया गया है। मन्दिरों में चरणामृत लेना भी मना कर दिया है। धार्मिक आयोजन, सामाजिक कार्यक्रम, सभी स्थगित से कर दिये गये

हैं। संक्रमण युक्त व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है। अस्तु। यह लॉक डाउन आध्यात्म–साधकों के लिये वरदान भी सिद्ध हुआ है। घर में रहकर ध्यानयोग का अभ्यास, मन्त्रजाप एवं स्वाध्याय जो मोक्ष दाता ग्रन्थों का कहा गया है उसके लिये भी पर्याप्त समय मिल गया है और आध्यात्मिक साधकों ने इसका पूरा लाभ उठाया भी है।

इस प्रकार से यह एक ऐसा समय आया जिसकी कल्पना मनुष्य को नहीं थी। अचानक ही दुनिया में यह कहर मच गया और देखते ही देखते लाखों लोग दुनिया से विदा हो गये। सर्वशक्तिमान ही सब लोगों का परम सुहृद एवं उद्धारक है उन्हीं की कृपा से दुनिया की रक्षा हो सकती है। अतः उन्हीं कृपा–निकेतन का स्मरण सभी को सभी समय रखना चाहिये।

सूचना

कोरोना वाइरस के कारण मार्च 2020 के अन्तिम सप्ताह से सम्पूर्ण देश में लॉक–डाउन घोषित कर दिया गया। इस कारण से लोगों का बाहर आवागमन रोक दिया गया। संक्रमण के भय से सब कुछ बन्द करा दिया गया। रेल यातायात, बस, टैक्सी, प्राइवेट वाहन सभी पर रोक लगा दी गई। सभी दुकानों, कल–कारखानों आदि की गतिविधियों को भी रोक दिया गया। इसी कारण मुद्रण से सम्बन्धित सभी कार्य बन्द रहे। परिणामस्वरूप **'सिद्धयोग'** पत्रिका का प्रकाशन भी **अप्रैल** व **मई** माह में नहीं हो पाया, जिसका हमें खेद है।

आशा है पाठकगण हमारी इस मजबूरी को ध्यान में रखते हुए पूर्व की भाँति सहयोग बनाए रखेंगे।

—सम्पादक
'सिद्धयोग'
श्री सिद्धगुफा सवाई, आगरा।

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

अध्याय 47 में उद्धव तथा गोपियों की बातचीत तथा भ्रमर को निमित्त बनाकर गोपियों ने भगवान के प्रति उपालम्भ व्यक्त किया है।

प्रातः गोपियों ने श्रीकृष्ण दूत उद्धव जी को श्रीकृष्ण जैसे वेषभूषा में देखा। उत्सुकता से भरी वे सभी गोपियाँ उद्धवजी को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गयीं। जब वे यह जान गयीं कि भगवान का संदेश हम लोगों के लिये लेकर आये हैं तो उन्हें एकान्त में ले जाकर सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाकर बोलीं—उद्धव जी! आप यदुनाथ के पार्षद हैं। उनका संदेश लेकर आये हैं। आपके स्वामी ने अपने माता-पिता को सुख देने के लिये यहाँ भेजा है।

शुकदेव जी ने कहा—परीक्षित्! गोपियों का मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्ण में ही तल्लीन था। उद्धव जी से बात करते-करते वह भूल गयीं कि कौन सी बात किसके सामने कहनी चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण के बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक की जितनी लीलायें की थीं, उन सबको याद-करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं। वे आत्म-विस्मृत होकर स्त्री-पुरुष-सुलभ लज्जा को भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं।

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसः।
कृष्ण दूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिका:।। 9।।
गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोर बाल्ययो:।। 10।।

अ. 47 श्लो. 10

थोड़ा चैतन्य होने पर एक ने भौंरे के प्रतीकात्मक माध्यम से अपने से बात करती हुयी कहने लगी—भौंरे! वे कृष्ण हमारे लिये तड़प रहे हैं, ऐसा क्यों कहता है? उनकी कपट भरी मनोहर मुसकान और भौंहों के इशारे से जो वश में न हो जायें—ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं?

अरे! अज्ञानी भौंरे। स्वर्ग में, पाताल में और पृथ्वी में एक भी स्त्री नहीं है, औरों की बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मी जी भी उनके चरण रज की सेवा किया करती हैं। फिर हम किस गिनती में हैं? परन्तु तुम उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो उत्तमश्लोक है,

साधु तुम्हारी कीर्ति का गान करते है। पर यह सही तभी है जब तुम दीनों पर दया करो नही तो श्रीकृष्ण! तुम्हारा उत्तमश्लोक नाम झूठा पड़ जायेगा।

भौंरे! (यह उद्‌बोधन श्री उद्धवजी के निमित्त है) श्रीकृष्ण लीला का एक कण भी जिसके कान में पड़ गया, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व छूट जाते हैं। बहुत से लोग गृहस्थी छोड़कर अकिंचन भीख माँग कर पेट भरते हैं। उन्हें दीन-दुनिया से कोई लगाव नहीं रहता। वे श्रीकृष्ण लीला कथा कभी छोड़ नहीं पाते। यथार्थतः इस रस का चसका ही ऐसा है। यही दशा हमारी हो रही है।

यदनुचरितलीला कर्ण पीयूषविप्रुट–
सकृददनविधूतद्वन्द्व धर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहंगा भिक्षुचर्या चरन्ति।। 18।।

अ. 47 स्क. 10

उद्धव जी ने गोपियों का विरह-योग, कभी प्रेमयोग की तन्मयता देख स्वयं चकित थे उन्होंने गोपियों को सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा–अहो गोपियों! तुम्हारा जीवन कृतकृत्य है। तुम! सारे संसार के लिये पूजनीय हो क्योंकि तुमने सम्पूर्णता से अपना सर्वस्व भगवान को समर्पित कर दिया है।

दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा समाधि तथा कल्याण के अन्य साधनों द्वारा भगवान की भक्ति प्राप्त हो, यही प्रयत्न किया जाता है। आपने तो भगवान श्रीकृष्ण के प्रति सर्वोत्तम प्रेम भक्ति प्राप्त की है और उसी का आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े ऋषि-मुनियों को भी दुर्लभ है।

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते।। 24।।
भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्टया मुनीनामपि दुर्लभा।। 25।।

अ. 47 स्कं. 10

महाभाग्यवान गोपियों! श्रीकृष्ण-वियोग से तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्मा के प्रति यह भाव प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओं के रूप में उनका दर्शन करता है। तुम लोगों का वह भाव मेरे सामने भी प्रकट हुआ। यह मेरे ऊपर तुम देवियों की बड़ी कृपा है। तुम्हारे प्रियतम कृष्ण ने तुम्हें जो संदेश भेजा है, अब उसे सुनो। उन्होंने कहा है–मैं ही सबका

उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ। मैं ही अपनी माया द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में होकर उनका आश्रय भी हूँ। सच में उन रूपों में मैं ही व्यक्त हुआ हूँ। मैं अपने आपको रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ।

जिस प्रकार सब नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्म-विवेक, त्याग-तपस्या, इन्द्रिय संयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्ति के ही साधन है। सबका पूर्णफल है मेरा साक्षात्कार, क्योंकि वे सब मन को निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं।

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम्।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः।। 33।।

गोपियों! मैं तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ। परन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। इससे तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको। शरीर से दूर रहकर भी तुम मन से मेरा सानिध्य अनुभव करो। अशेष वृत्तियों से रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुम मेरा अनुस्मरण करोगी, तब शीघ्र ही सदा के लिये मुझे प्राप्त हो जाओगी।

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत्।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ।। 36।।

अ. 47 स्कं. 10

यह दिव्य संदेश सुनकर गोपियाँ प्रेम से भरकर उद्धव जी से कहा-प्यारे कृष्ण! तुम्हीं हमारे जीवन स्वामी हो। ब्रजगोपियों के एकमात्र तुम्हीं स्वामी हो। श्याम सुन्दर! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है। तुम्हारा यह सारा गोकुल और हम गोपियाँ दुःख के अपार सागर में डूब रही हैं। तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो।

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात्।। 52।।

गोपियों की भाव समाधि देख उद्धव जी उन गोपियों को नमस्कार करते हुये स्वयं रोमांच पाकर गाने लगे। अहा! मैं इस वृन्दावनधाम में कोई झाड़ी, लता, जड़ी-बूटी बन जाऊँ जिससे इन गोपियों की चरण-धूलि निरन्तर सेवन करने को मिलती रहेगी। इनके चरण-रज पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा। देखो तो इन्होंने लोक-वेद मर्यादा का परित्याग करके भगवान के साथ पूर्ण तन्मयता तथा उनका पूर्ण प्रेम प्राप्त कर लिया है। औरों की बात ही क्या-भगवद्वाणी, श्रुतियाँ, उपनिषदें, भी भगवान के परम प्रेममय स्वरूप को खोजती रहती हैं, परन्तु प्राप्त नहीं कर पातीं।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधी नाम।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।। 61।।

अ. 47 स्क. 10

स्वयं लक्ष्मी जी, ब्रह्मा, शंकर और पूर्णकाम योगेश्वर अपने हृदय में चिन्तन करते रहते हैं। धन्य हों वह गोपियाँ जिन्होंने रासलीला के समय श्रीकृष्ण के उन्हीं चरणों को वक्षःस्थल पर रखा उनका आलिंगन करके विरह–व्यथा शांत की।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै–
योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्।। 62।।

उद्धव जी! गोपियों के संग रह कर जो श्रीकृष्ण–लीला गान सुना उससे उनमें प्रेम–शक्ति संचार हुआ परिणामस्वरूप वे दिव्य प्रेमानुभव को प्राप्त हुये। ब्रज में कई मास उद्धव जी का वास रहा। अन्त में मथुरा जाने हेतु नन्दबाबा और मैया यशोदा से आज्ञा प्राप्त की। रथ पर चढ़कर जब मथुरा गमन करने को हुये तो गोपगण एवं नन्दबाबा ने अपने कन्हैया के लिये भेंट सामग्री लेकर आये। सभी ब्रजवासी श्रीकृष्ण भक्ति में निरन्तर निमग्न थे।

उद्धव जी मथुरा पहुँचे। भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा, कह सुनाया। नन्दबाबा एवं गोपों द्वारा दिया भेंट सामग्री दीं।

संसार-रचना के पीछे उद्देश्य

डॉ. श्री ऋषिराम शर्मा
हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

नित्यानन्दं परमसुखदं केवलज्ञानमूर्तिं।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यं।।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतं।
मायातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरु तम् नमामि।।

जबसे गुरुदेव के चरण कमलों का स्पर्श मिला है, तबसे योग मेरे जीवन का परम-लक्ष्य बन गया है। एक ऐसा संस्कार दृढ़ीभूत हो गया है, जिसका चिन्तन, जिसका श्रवण और जिस पर वार्ता मुझे हठात् खींच लेती है। किन्तु पता नहीं किस कर्म संस्कार का प्रभाव या मेरे मन की कार्पण्यता मुझे प्रमाद के क्षेत्र में बाँधे रखती है। अतः योग-साधना के नाम पर मैंने कुछ नहीं किया है, फिर भी अपनी बुद्धि, अपनी श्रद्धा तथा अपने मन की धारणा के अनुसार शास्त्रों के विचारों को आपके समक्ष रख रहा हूँ। आशा है कि योग-जिज्ञासु मेरी निजी कमियों पर ध्यान न देकर योग के शास्त्र सम्मत रहस्यों को समझने तथा मनन करने में आनन्द लेंगे।

मानव-जीवन हमें ईश्वर की अमूल्य देन है, क्योंकि मानव-बुद्धि ही इस संसार के रहस्यों को जानने में समर्थ है। यह संसार कर्म-विपाक के परिणामस्वरूप मिला है। हम दुःख भोगते हैं, इसका दोषी ईश्वर नहीं, अपितु हमारे स्वयं के पाप-कर्म हैं। शास्त्र का स्पष्ट सिद्धान्त है कि जीवों के पाप-कर्म का भुगतान दुःख के रूप में होता है और पुण्य-कर्म का भुगतान सुख के रूप में होता है। जीव सुख चाहता है, किन्तु पुण्य कर्म करने में उसकी कोई रुचि नहीं और दुःख भोगने को तैयार नहीं, परन्तु दुर्वासनाओं के वशीभूत निरन्तर पाप-कर्म में यत्नपूर्वक रुचि रखता है, यही जीव के भाग्य की विडम्बना है। प्रायः लोग कहते हैं कि ईश्वर ने जीवों को माया के बन्धन में बाँधकर दुःख भोगने के लिए इस संसार की रचना क्यों की है? वह लोग इस रहस्य को समझने की कोशिश नहीं करते कि ईश्वर ने तो जीवों के दोनों हाथों में लड्डू दे दिए हैं। जैसा मन चाहे वैसा खाओ। किन्तु प्रकृति का एक अटूट नियम है कि परस्पर विरोधी चीजें साथ-साथ नहीं रहतीं। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार

नहीं, जहाँ दिन है, वहाँ रात नहीं। जहाँ भोग है, वहाँ योग नहीं। अतः दोनों लड्डू का आनन्द एक साथ नहीं। यदि भोगरूपी लड्डू के खाने में रुचि है, तो योग–समाधि वाला लड्डू गायब। आचार्य रजनीश का ''भोग से समाधि'' वाला सिद्धान्त शास्त्र–विरुद्ध एवं भोगाकृष्ट बुद्धि का विलास मात्र है तथा आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कराने में उसका कोई योगदान नहीं हो सकता है। अतः मैं आपको शास्त्रीय सिद्धान्त समझाना चाहता हूँ, जिससे कपोल–कल्पित बातें बुद्धि को कलुषित न करें। भगवान् पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है कि–

प्रकाशस्थितिक्रियाशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम्।

अर्थात् त्रिगुणात्मक दृश्य–जगत की रचना के पीछे दो उद्देश्य हैं–एक है भोग देना और दूसरा है मोक्ष देना। जब जीव बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा इस दृश्य–जगत को देखता है तो यह भोग देता है और जब अन्तर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा इस दृश्य–जगत का अनुभव किया जाता है, तब यही दृश्य–जगत योग–विद्या के प्रकाश से मोक्षदाता बन जाता है। उपनिषद् भी इसकी पुष्टि करते हैं कि–

पराञ्चिखानि वितृणत् स्वयम्भूः,
तस्मात् परान्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्,
आवृतचक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

अर्थात् परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। अतः इनका स्वभाव बाह्य–जगत का अनुभव करना है। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ बुद्धि के आवरण में कार्य करती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि बुद्धि बोधात्मक आत्मा–जीवात्मा की उपाधि धारण कर कर्ता–भोक्तापन के आवरण में विषयक सुख–दुःख का अनुभव करती है। कर्मफल के परिणामस्वरूप स्थूल भोग उपस्थित होता है और बहिर्मुखी इन्द्रियों की वृत्तियों का उससे सम्बन्ध होता है और सुख–दुःख की अनुभूति होती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के पीछे केवल कर्म परिणाम है। कर्म का सिद्धान्त है कि–

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'

अर्थात् अच्छे–बुरे की भावना से युक्त कर्मों का फल निश्चय ही भोगना पड़ता है। यह बात दूसरी है कि बहिर्मुखी जीवों को स्थूल में चिरकाल तक भोगना पड़ता है और अन्तर्मुखी जीव सूक्ष्म में अल्पकाल में भुगतान कर लेते हैं। इस सुख–दुःख के भुगतान में एक बात विचारणीय है कि–

कन्डूयमानेन यत् कन्डूसुखं,
स्यात् तत् किं भवेत् सुखम्।

पश्चात् यत्र महापीड़ा,

तथा वैषयिकं सुखम्।।

अर्थात् जिस प्रकार खुजली के रोग में खुजाने से सुख की अनुभूति होती है और अधिकाधिक खुजाने की प्रवृत्ति बनी रहती है किन्तु खुजाने के बाद रोग तथा कष्ट दोनों ही बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग में सुख की अनुभूति होती है, जिसे आनन्दाभास कहते हैं और सुख की वासना अधिकाधिक विषय की ओर मन को प्रवृत्त करती है, किन्तु परिणामस्वरूप भवरोग एवं नाना प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है, क्योंकि–

परिणाम तापसंस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च सर्वं दुःखमेव विवेकिनः।

अर्थात् विवेक दृष्टि से देखा जाये तो बहिर्मुखी इन्द्रियों के सभी कार्य–व्यापार में दुःख ही दुःख भरा है। जब जीवात्मा विषय–सुख का भोग करता है, तो उसके परिणामस्वरूप विकारों की उत्पत्ति हो जाती है, जिनकी परिणति घोर दुःख तथा अज्ञानान्धकार में भटकने में होती है। प्रकृति के नियमानुसार अनेकानेक शारीरिक एवं मानसिक कष्ट हठात् आते हैं और इन परिणामी एवं ताप दुःखों से कर्त्ता भोक्तापन के आवरण के कारण कर्म संस्कार कर्माशय बनाते जाते हैं जो भावी योनियों के बीजों का भण्डार है। इसके अतिरिक्त सभी जीव राग द्वेष की मदिरा के प्रभाव में गुणात्मक वृत्तियों में परस्पर विरोध होने के कारण कलह–क्लेश से आक्रान्त रहते हैं। अतः सुखार्थी जीव सर्वत्र दुःखों के घनघोर काले मेघों से घिरा है और प्यासे मृग की भांति मृग–तृष्णा में फँसा है। यह सब बहिर्मुखी इन्द्रियों की करामात है जो कि संसार का भोगार्थक स्वरूप है।

इस संसार–रचना का दूसरा पक्ष है अपवर्ग, यही मोक्ष का दाता है। जब शास्त्रों का मनन करते रहने से, महापुरुषों के सत्संग से उनकी अमृतवर्षिणी वाणी के उपदेशों को सुनने तथा जप–स्वाध्याय के प्रभाव से बुद्धि बहिर्मुखी संसार की निस्सारता को समझ जाती है, तब जीव गुरु–चरणों का आश्रय लेता है, जहाँ उसके भवसागर में डूबते हुए भयाक्रान्त मन को विश्राम मिलता है। गुरु–सेवा से मन का मलावरण हटता है और वह गुरु के आदेश से गुरु मन्त्र की जप–साधना करता है। इस जप–साधना के प्रभाव से उसकी धारणा–शक्ति विकसित होती है और सतोगुणी प्रकाश का सूर्योदय होता है, जिससे उसका अन्तर्मुखी, जगत प्रकाशित होता है। मनोवृत्ति अन्तर्मुखी होकर दृश्य–जगत के भोग–दृश्यों से हटने लगती है और मन में वैराग्य की किरण प्रवेश करती है और गुरु–कृपा से शनैः–शनैः एक अलौकिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है कि–

स्वाध्यात् योगमासीत्,
योगात् स्वाध्यायगामनेत्।
स्वाध्याय योगसम्पत्या,
परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय करते–करते सत्व वृद्धि से मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती जाती है और अन्तर्जगत की अनुभूतियाँ आरम्भ हो जाती हैं जिससे जीव का योग में प्रवेश हो जाता है। योग में प्रवेश हो जाने के बाद ध्यान शक्ति का विकास होने लगता है जो पूर्व जन्मों के पाप समूहों को नष्ट करने में सक्षम है। इसके परिणाम स्वरूप मन को अन्तरानुभूतियों का रस मिलने से वह जपस्वाध्याय में सहज प्रवृत होने लगता है। इस प्रकार स्वाध्याय से योग और योग से स्वाध्याय दोनों एक–दूसरे को पुष्ट करते जाते हैं और इसके परिणाम स्वरूप रजोगुण तथा तमोगुण की कीचड़ साफ हो जाने पर शुद्ध जल के समान स्वच्छ सतोगुण की भूमिका बनती है जिसमें परमात्मा का बिम्ब स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यही अपवर्ग की ओर ले जाता है, क्योंकि जगदात्मा भगवान कृष्ण की वाणी है कि–

तेषां नित्ययुक्तानां,
भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं,
येन मामुपयान्ति ते।।

अर्थात् जो जीव निरन्तर युक्तमन से मेरा प्रेमपूरित ह्रदय से भजन करता है यानि जिसका मन प्रेमावेश में एकाग्र हो गया है, जिसका अन्तःकरण स्वाध्याय तथा योग की साधना से तमोगुण तथा रजोगुण के मलविकारों से परिमार्जित हो गया है, जिसकी बुद्धि मायामोह के आवरण से मुक्त होकर वैराग्य सम्पन्न हो गई है। और जिसका पापपुंज गुरुकृपा से भस्म हो गया है, उसे ही मैं समाधि योग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वह मेरे सच्चिदानन्द स्वरुप में लीन हो जाता है और तीनों बन्धनों को काटकर अपवर्ग के लक्ष्य को पा जाता है।

सूक्ष्म में निष्कर्ष यह निकला कि यह दृश्य जगत बहिर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा भोगरूप प्रकट होता है और अन्तर्मुखी इन्द्रियों के द्वारा सत्वाकाश में अपवर्ग रूप प्रकट होता है।

मन में जैसी धारणा रहती है, मन जीव को उसी ओर खींच लेता है, क्योंकि–

यादृशा वासनामूला,
वर्तते जीवसंगिनी।

तादृशं वहन्ते जन्तुः,
कृत्याकृत्यविमोभ्रमम्।।

अर्थात् कर्माशय के माध्यम से जीव की बुद्धि पर वासना का आभास निरन्तर पड़ता रहता है जिसके कारण मन उसी आभास से रंगित हुआ वृत्तियों की किरणों पर सवार होकर दृश्य जगत् में भ्रमण करता है और परिणामस्वरूप जीव अनेकानेक योनियों को धारण कर पाप–पुण्य के कर्मों का भोग भोगता है। अतः विचारणीय विषय यही है कि जब तुम ही भोग की दलदल में फंसने के लिए लालायित हो तो कौन तुम्हारी सहायता करे? यदि बन्दर ने छोटे मुख वाले बर्तन में लोभवश हाथ डालकर भोगरूपी दानों से मुट्ठियाँ भर ली हैं और वह अपनी मुट्ठी खोलने के लिए राजी नहीं है तो कोई उसे उस बन्धन से कैसे छुटाये। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि–

''इच्छामात्रको बन्धः,
तत्यागोः मोक्ष उच्यते''।

अर्थात् जीव अपनी इच्छा से मायिक बन्धन में बन्धा है, क्योंकि वह भगवान से भी सच्चे मन से मोक्ष की इच्छा नहीं करता, अपितु भोग प्राप्ति की ही प्रार्थना करता है, वह तो परम प्रभु करुणार्णव है जो भोग देने के साथ शनैः उसके हृदय में अपने लिए प्रेम उत्पन्न कर देते हैं और प्रेमाकर्षण के वशीभूत सकाम उपासना ही उसे अनजाने में अपवर्ग के पथ पर ले जाती है। जगदात्मा श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि–

न मां दुष्कृतिनो मूढाः,
प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना,
आसुरं भावमाश्रिताः।।
चतुर्विधा भजन्ते मां,
जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुर्थार्थी,
ज्ञानी च भरतर्षभ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त,
एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ–
महं स च मम प्रियः।

उदाराः सर्व एवैत,

ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

—गीता 7/15-16-17-18

अर्थात् जो जीव हठवशात् दुष्कर्मों में लगे हुए हैं, दूसरे जीवों को सताना ही जिनका स्वभाव बन गया है, जो रागद्वेष के मायावरण में आसुरी सम्पदाओं की मदिरा पीकर विमोहित हो गये हैं, ऐसे जीव अपवर्ग के पथ से बहुत दूर चले जाते हैं और उनके मन मेरे से पूर्णरूपेण विमुख हैं। ऐसे जीवों को तो अधमयोनियों में डालने के अतिरिक्त मेरे पास उनके कल्याण का कोई उपाय ही नहीं किन्तु जो जीव हठात् दुष्कर्मों में न लगकर पुण्य कर्म करते रहते हैं और अपनी इच्छापूर्ति के लिए मेरा भजन करते हैं ऐसे जीवों की चार श्रेणियाँ हैं, पहली वह जो पूर्वकृत पापकर्म के फलस्वरूप बहुत दुखी हैं और अपने दुख से मुक्ति पाने के लिए मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखते हैं, दूसरे वह जो मायिक बन्धन को समझ गये हैं, भोगों की मृगतृष्णा से परेशान हो गये हैं तथा मुझे पाने की इच्छा बलवती हो गयी है।

तीसरे वह जो धन सम्पत्ति की कामना से मेरी उपासना करते हैं और चतुर्थ वह जो चिद्–जड़ ग्रन्थि का भेदन कर संशय रहित हो गये हैं और यथार्थज्ञान से कर्माशय को भस्म कर केवल मेरी भक्ति करते हैं। इनमें चतुर्थ श्रेणी का ज्ञानी तो मेरा ही स्वरूप है और मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु दूसरी तीनों श्रेणियों के जीव भी श्रद्धायुक्त होने के कारण कल्याण के भागी हैं और अन्ततोगत्वा अपवर्गपथ पर आ ही जाते हैं।

अतः यदि तुम भवसागर को पार करना चाहते हो, यदि इस दृश्य जगत की भोगरूपी कटीली झाड़ियों के भयावह जंगल में भटकने से मुक्ति पाना चाहते हो, यदि जन्म–मरण के अवर्णनीय दुःख से छुटकारा पाना चाहते हो, यदि अतीन्द्रीय परम सुख को पाकर निहाल होना चाहते हो, तो इसका एकमात्र उपाय है आत्म–निवेदन। जब जीव अपने को योग–योगेश्वर महाप्रभु के चरणों में पूर्णरूपेण अर्पण कर देता है तो उसकी साधना की उसकी योगभूमिकाओं में प्रगति की जिम्मेदारी स्वयं महाप्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं, भगवान कृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से इसकी पुष्टि करते हैं कि–

ये तु सर्वाणि कर्माणि,

मयि संन्यस्य मत्परा।

अनन्येनैव योगेन,

मां ध्यान्त उपासते।।

तेषामहं समुद्धर्ता,
मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ,
मय्यावेशित चेतसाम्।।

—गीता 12/6–7

अर्थात् जो जीव अपने सभी मानसिक एवं शारीरिक कार्य कलापों को मेरे भरोसे छोड़कर केवल मुझी को जीवन का परम लक्ष्य मान लेते हैं और अव्यभिचारिणी भक्ति से मेरा चिन्तन करते हैं। मेरी ही सब प्रकार से उपासना करते हैं, उन सरल स्वभाव वाले जीवों को भवसागर से पार उतारने के लिए मैं तुरन्त नौका बन जाता हूँ, यानी उनके हृदय में योग–चक्र चला देता हूँ जिससे अलौकिक प्रकाश का उदय होता है और अविद्या का अन्धकार नष्ट होता जाता है और अपवर्गरूपी लक्ष्य का राजमार्ग दिखाई देने लगता है। विशेष कर ईश्वर ने मानव सृष्टि इसी उद्देश्य से बनाई है। जो इस उद्देश्य को न समझे, वह आत्म हत्यारा है।

शोक संवेदना

बड़े दुःख के साथ सूचित करते है कि श्री महाप्रभु जी के भतीजे श्री प्रेमसागर जोशी जी का 24 फरवरी को बैकुण्ठ वास हो गया है। वे लगभग 85–86 वर्ष के थे। 24 फरवरी से पहले ही पत्रिका में छपने की सामग्री भेज दी जाती है और माह के अन्त तक पत्रिका छप जाती है इसलिये फरवरी व मार्च के संयुक्त अंक में छप नहीं पाया था। इसका हमें खेद है।

इस दुःख की बेला में हम आश्रमवासी सन्त दुःखी सदस्यों को अपनी हार्दिक शोक संवेदना प्रेषित करते हैं। श्री प्रभु जी उन्हें सद्गति देंगे इसमें कोई संशय नहीं है। वे प्रभु जी के अपने अंश थे। श्री प्रभु जी दुःखी सदस्यों को दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

शोकाकुल
आश्रमवासी साधकगण
श्री सिद्ध गुफा सवांई
आगरा।

पूर्व प्रकाशित से आगे–

योगेश्वर चरित्र माला

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वन तीर्थ यात्रा

हमारे चरित्रनायक श्री प्रभुजी हरिद्वार आदि के भ्रमण के बाद अपने पूर्व परिचित विद्यार्थी जयराम को साथ लेकर मुरादाबाद पहुँचे। कुछ दिन मुरादाबाद में निवास करते रहे और कई स्थानों पर धर्मोपदेश करते रहे। एक दिन श्री प्रभुजी राम–गङ्गा नदी के तट पर विद्यार्थी जयराम को कुछ योगोपदेश कर रहे थे। उस उपदेश में योग के अष्टविध ऐश्वर्य का कुछ वर्णन आया, तो उसमें श्री प्रभुजी ने विद्यार्थी जयराम को समझाया कि–भाई देखो! यह अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईश्त्व, वशित्व, यत्रकामावशायित्व, ये सब योगियों की निधि हैं। योगी इनको पा करके निहाल और कृतार्थ हुआ करते हैं। इन ऐश्वर्यों को पा करके योगी 'कर्तुंम कर्तुंम् एवं अन्यथाकर्तुम्' की ताकत वाला बन जाया करता है। वस्तुतः योग ही योगी की अमर निधि है, इस विद्या को प्राप्त किये बिना मनुष्य का जीवन निरर्थक है। वही मनुष्य धन्य है, जिसने जन्म धारण करके योग–विद्या में प्रवेश पा लिया। श्री प्रभुजी अपने इस योगोपदेश के प्रकरण के अन्दर कुछ कर्तुंम–कर्तुंमन्यथा कर्तुंम् की शक्ति वाले महापुरुषों का जिकर कर रहे थे। इस प्रकरण को सुनकर नगरवासी किसी सत्संगी ने हाथ जोड़कर श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि महाराज! यहाँ से थोड़ी दूर पर जिला नैनीताल में काशीपुर नामक एक स्थान है, वहाँ से कुछ ही दूरी पर 'वनतीर्थ' नाम का एक स्थान है। जिसमें एक योगिराज महात्मा निवास करते हैं, वह अपने पास कुछ गायों को रखा करते हैं। प्रातःकाल होते ही वे अपनी गायों को चराने के लिए जंगल की ओर भिजवा दिया करते हैं। उन महात्माजी का प्रभाव इतना विलक्षण है कि वे गायें सारे जंगल में सब दिन घास और पानी ग्रहण करके अपने आप ही शाम को महात्मा जी के स्थान पर आ जाया करती हैं। सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि इस जंगल में शेर व चीते आदि रहते हैं, किन्तु योगिराज महात्मा जी के प्रभाव से उन गायों का कोई कुछ नहीं बिगड़ता। कभी–कभी तो यहाँ तक हो जाता है कि शाम को गायें जिस समय घर लौटती हैं, तो उनके साथ–साथ शेर भी भेड़–बकरियों की तरह चला आया करता है। यह सब उन महात्मा जी

की योग–शक्ति का प्रभाव है। महात्मा जी के आश्रम में अष्ट–सिद्धि नव–निद्धि का वास हर समय रहा करता है। उनके अलौकिक कार्य बिना किसी प्रयास के अपने आप ही सिद्ध होते रहते हैं। आश्रम में सब प्रकार से सुख और शान्ति का वास रहता है। वनतीर्थ की इस प्रकार की महिमा उस नगर निवासी सत्संगी से सुनकर श्री प्रभूजी ने वनतीर्थ जाने का विचार किया और कुछ ही दिनों में इधर–उधर घूमते हुए काशीपुर के पास वनतीर्थ नामक जंगल में जा पहुँचे। वहाँ जाकर क्या देखा कि जिन महात्मा जी की बड़ाई सुनी थी, वे तो वहाँ नहीं हैं, किन्तु उनके स्थान पर लक्ष्मणदास नामक एक वैरागी महात्मा कृत्रिम अभिनय से अपने आपको पुजवा रहा है। लक्ष्मणदास को श्री प्रभुजी भली प्रकार जानते थे। श्री प्रभुजी ने लक्ष्मणदास को पहचानकर कहा कि अरे लक्ष्मणदास! तुमने यह क्या प्रपंच फैला रखा है? तुम तो एक अति साधारण व्यक्ति हो, तुम्हें साधारण ही रहना चाहिए था। इतना लम्बा–चौड़ा प्रपंच फैलाना तुम्हारे लिये उचित नहीं। क्या तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि अमुक योगिराज महात्मा जी ने जयपुर में अपने शरीर को छोड़ दिया था और तुमने ही उनके शव को नदी में बहा दिया था। अब तुम स्वयं ही उनके नाम पर योगिराज बन बैठे हो। क्या जन–समाज के साथ यह धोखा नहीं है? लक्ष्मणदास वैरागी ने जब श्री प्रभुजी के मुख से ये बात सुनी, तो वह तत्काल पहचान गया कि वह कोई पूर्ण योगिराज हैं, अब इनके सामने मेरा पोप–जाल और दम्भ नहीं चलेगा। यह विचारकर वह तत्खण चरणों में गिर गया और प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं, आपसे क्या छिपा है? जो कुछ आपने बतलाया वह सब बिल्कुल सत्य घटना है। श्री महाराज जी ने गङ्गा–किनारे ही शरीर को छोड़ दिया था और उनकी अन्त: क्रिया करके मैंने ही उनके शरीर को नदी में प्रवाहित कर दिया था। मैंने यह प्रपंच उनके भक्तों के हित के लिए किया था। अब आप मुझे अपने चरणों में शरण दे दें और पवित्र योग–मार्ग का उपदेश करें, जिससे मेरा कल्याण हो। श्री प्रभुजी ने उसकी विनम्र प्रार्थना को सुनकर योग का उपदेश दिया और यम–नियमों के पालन का आदेश देकर श्री प्रभुजी जयपुर की ओर चले गये। लक्ष्मणदास वैरागी श्री प्रभु जी की चरण–सेवा में जयपुर तक साथ गया एवं वहाँ से आशीर्वाद प्राप्त करके वनतीर्थ को लौट आया और वहाँ आकर श्री प्रभुजी के आदेशानुसार योग की अपनी कठोरतम् साधना में लग गया।

मन-इन्द्रियों को वश में करके परमात्मा को प्राप्त करें

—श्री जयदयाल गोयन्दका

कठोपनिषद् में शरीर को रथ, इन्द्रियों को घोड़े, मन को लगाम, बुद्धि को सारथि, इन्द्रियों के विषय को रथ को चलने का मार्ग और जीवात्मा को रथी बतलाया गया है। परमात्मा के अंश जीवात्मा को इसी रथ के द्वारा विषयों के मार्ग पर चलकर ही परमात्मा के परम धाम पहुँचना है। रथ को घोड़े ही चलाते हैं, परन्तु घोड़े उच्छृङ्खल होकर उलटे मार्ग पर भी जा सकते हैं और वश में रहकर सीधे परमात्मा के मार्ग पर भी चल सकते हैं। जिस रथ का सारथि विवेकयुक्त, अप्रमत्त, स्वामी का आज्ञाकारी, लक्ष्य पर स्थिर, बलवान्, रास्ते को जानकर और घोड़ों की लगाम के सहारे से अपने वश में रखकर—इच्छानुसार सन्मार्ग पर चला सकता है, वह रथ अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिस पुरुष की बुद्धि विवेकसम्पन्न, जीवात्मा को परमात्मा के धाम में ले जाने के लिये तत्पर परमात्मा में लगी हुई, मन-इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाली सदा सावधानी के साथ सबको साधन-मार्ग पर ले चलने वाली होती है, वह पुरुष इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरता हुआ भी—जैसे सत्-सारथि के द्वारा संचालित रथ मार्ग पर चलकर लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है, वैसे ही परमात्मा की ओर बढ़ता रहता है। इन्द्रियाँ तथा मन यदि साधक के अपने वश में हों और साधक उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयों में ही लगाये रखे तो इस प्रकार उन इन्द्रियों का विषयों में विचरण करना हानिकारक नहीं है, प्रत्युत लाभदायक है, क्योंकि ऐसा करके वह परमात्मा के समीप पहुँच जाता है। जब तक शरीर, इन्द्रियाँ और मन हैं, तब तक उनको विषयों से सर्वथा अलग कर देना सम्भव नहीं है। अतएव साधक उनमें से राग-द्वेष को हटाकर विशुद्ध बना ले और फिर उनका यथायोग्य साधन रूप विषयों में उपयोग करे। भगवान् ने कहा है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

(गीता 2/64–65)

अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक तो अपने वश में की हुई राग–द्वेष से रहित इन्द्रियों के द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर परमात्मा में ही भलीभांति स्थिर हो जाती है।

यह है वश में किये हुये रागद्वेष रहित मन–इन्द्रियों के सद्‌विषयों में विचरण करने का परिणाम। जिन मन–इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रिय–सुख की आशा से विषयों का उपभोग करके दुःखों को निमन्त्रण दिया जाता है, उन्हीं मन–इन्द्रियों से उन्हें साधन में लगाकर परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है, परन्तु जिसकी बुद्धि असावधान है, निर्बल है, इन्द्रियों तथा मन के अधीन है, प्रमत्त है, लक्ष्यशून्य है और परमात्मा को भूली हुई है, उसको ये ही इन्द्रियाँ विपरीत मार्ग में अग्रसर होकर वैसे ही सर्वथा पतन के गर्त में गिरा देती हैं, अथवा किसी भयानक दुष्कर्म–रूप पत्थर से भिड़ाकर मानव–जीवन को चूर–चूर कर डालती हैं, जैसे असावधान और निर्बल सारथि के द्वारा लगाम को प्रचण्ड बलवाले घोड़ों के अधीन छोड़ देने पर घोड़े उस रथ को सारथि और रथी सहित गहरे गड्ढे में डाल देते हैं, अथवा किसी दीवाल से टकराकर चकनाचूर कर डालते हैं।

विचार करने पर यह पता चलता है कि इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही बहिर्मुखी हैं। वे नित्य–निरन्तर विषयभोग के लोभ में पड़ी हुई विषयों की ओर दौड़ती और मन–बुद्धि को भी बलपूर्वक खींचती रहती हैं। अतः उनको सदा–सर्वदा सावधानी से मन के सहारे से यानी मन को उनके साथ न जाने देकर वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिये। इन्द्रियाँ वश में न होंगी और मन उनका साथ देने लगेगा तो वे बुद्धि को वैसे ही विचलित कर देंगी जैसे जल में पड़ी हुई नौका को वायु डगमगा देती है। भगवान् ने गीता में यही कहा है–

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।

(गीता 2/67)

क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष

की बुद्धि को हर लेती है। इस पर भगवान् कहते हैं–

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। *(गीता 2/68)*

इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।'

जिस प्रकार चतुर और सुयोग्य केवट नाव को भँवर से तथा प्रबल जलधारा में बहने से बचाकर, खास करके पाल के सहारे से वायु को अनुकूल बनाकर सावधानी से डाँड़ खेता हुआ मार्ग पर अग्रसर होता रहता है, तो नाव सुरक्षित अपने स्थान पर पहुँच जाती है, इसी प्रकार भ्रम–प्रमादादि से रहित सुयोग्य एकनिष्ठ साधक बुद्धि मन–इन्द्रियों से युक्त शरीर–रथ को राग–द्वेष रूपी भँवर तथा कामनारूपी तीव्रधार जल के प्रवाह से बचाकर सत्संगरूपी पाल के सहारे से भगवत्कृपा रूप वायु को अनुकूल बनाकर आगे बढ़ाता रहता है तो वह सुरक्षित भगवान् के परम धाम में पहुँच जाता है।

अतएव साधक को चाहिये कि वह अपने को शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि का स्वामी मानकर उनके वश में न हो, बल्कि इन्द्रियों को उनके पतनकारक तथा अनावश्यक मनमाने विषयों में जाने से रोककर, उनमें रहे हुए राग–द्वेष से उन्हें छुड़ाकर मन को वश में करे और बुद्धि को एक परमात्मनिष्ठ निश्चयात्मिका बनाकर परमात्मा में स्थिर कर दे। यथार्थतः ऐसा हो जाने पर तो मन–इन्द्रियों के द्वारा होने वाले सभी कार्य सहज ही भगवत्कार्य बन ही जाते हैं। परन्तु इसके पहले साधनकाल में भी इस आदर्श के अनुसार साधन करने से चित्त की प्रसन्नता, निर्मलता प्राप्त हो जाती है और उसके द्वारा भगवत्प्राप्ति का मार्ग सुलभ और प्रशस्त हो जाता है। अतः साधक का कर्त्तव्य है कि वह इस प्रकार साधन करके मानव–जीवन के परम लक्ष्य, परम शान्ति और परमानन्द–स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करे।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सोई जानई जेहि देहुँ जनाई...(1)

—जगदीश राए बंसल 9212434003

योग योगेश्वर त्रय लोक पावन गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के परम लाड़ले शिष्य और हमारे वरिष्ट गुरुभाई श्री दुर्गा सिंह तोमर जी मूल रुप से ग्वालियर के निवासी थे। जो म. प्र. राज्य के एक्साईज कमिश्नर के पद से सेवा निवृत हुए। इन्होंने ग्वालियर के निकट सिथौली नामक स्थान पर एक योग आश्रम भी स्थापित किया हुआ है। आपने दिनांक 17 जुलाई 2019 को अपना देह त्याग किया। अपने सेवा काल में 'कर्म–पथ' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की जो प्रत्येक साधक के लिए, गुरुदेव जी के आशीर्वाद के रूप में संजीवनी का कार्य कर रही है। वैसे तो अपने अन्तर्यामी गुरुदेव को पूर्ण रूप से कोई नहीं जान सकता, परन्तु–

सोई जानई जेहि देहुं जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होई जाई।।

के अनुसार श्री तोमर साहिब ने गुरु जी को बहुत कुछ जाना है। अतः उक्त पुस्तक से श्री तोमर जी के कुछ अनुभव उन्हीं की तरफ से साधकों के हितार्थ लिखने का प्रयास किया जा रहा है कि–

मैंने सन् 1965 में गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर धार्मिक नगरी ऋषिकेश में गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा ग्रहण की थी। गुरु जी ने मुझे स्वप्न में प्रेरणा देकर बुलाया था। दीक्षा के समय गुरु जी ने मुझे संकेत किया था कि मैंने तुम्हें बुलाया है, तुम महाभारत काल के समय से श्री प्रभु जी के श्री चरणों में रहते आए हो। तुम्हें योग सिद्धि शीघ्र प्राप्त होगी। क्योंकि दीक्षा की शक्ति शनैः–शनैः शिष्य के दुर्गुण निकाल कर सद्गुण भर देती है। शक्ति पात दीक्षा लेने के पश्चात् उस समय के अपने निवास स्थान दतिया आकर मैंने साधना आरम्भ की तो ठीक सत्रहवें दिन सायं के लगभग आठ–साढ़े आठ बजे ध्यान में बंदूक चलने जैसी तीव्र आवाजें आईं। तत्पश्चात् मेरे गुदा द्वार से तीन चार अंगुल ऊपर एक स्वर्ण जैसी आभा लिए अग्नि स्वरुप बिजली सी महान शक्ति हड्डी में प्रवेश कर गई, साथ ही करोड़ों सूर्य के समान महा प्रकाश मेरे सामने हो गया। उस समय के आनन्द–कल्पना–और वर्णन लेखनी से परे की बात है। इसके पश्चात् मुझे देव दर्शन आरम्भ हो गए।

ध्यान धारणा जब समाधी हो गया।
रोम रोम तब ध्यानारथ हो गया।।

चलते फिरते, ऑफिस में बैठे–बैठे देव दर्शन होना सामान्य बात थी क्योंकि गुरुदेव भगवान द्वारा कुण्डलिनी योग शक्ति पात की दीक्षा दी गई थी। गुरुदेव जी के अनुसार यह सब पूर्व जन्म की साधना एवं सदा शिव की कृपा स्वरूप ही सम्भव हुआ है। गुरुदेव भगवान के पत्रानुसार मेरे मोक्ष प्राप्ति का मार्ग एक दम सरल कर दिया था, मात्र पूर्व कृत कर्मों के क्लिष्ट संस्कारों का भुगतान भर करना शेष था। क्योंकि जो साधक अपना सर्वस्व गुरुदेव को समर्पित कर देता है, गुरुदेव उसकी अंगुली पकड़कर सब संकटों से पार कर देते हैं। यमराज की भी ताकत नहीं कि उसका बाल बाँका कर सके। गुरुदेव कहा ही करते थे कि उत्कृष्ट शिष्य गुरु का ही तेजांश होता है। शिष्य की पहचान उसके गुरुदेव की महानता से होती है। गुरु के थपेड़े खाए बिना कोई भी आदर्श–साधक नहीं बन सकता।

ध्यानी बन कर ध्यान करे–साधन करे हजार।
श्री सद्‌गुरु की कृपा बिना–सब कुछ है बेकार।।

एक बार सन् 1966 के मार्च की बात है। मैं रात्रि को ध्यान में देखता हूँ कि आरती के समय जैसे घण्टे बजने शुरू हो गए। इन आनन्द दायक घण्टों की आवाज के सहारे मैं देव लोक पहुँच गया। वहाँ के व्यक्ति दिव्य प्रकाश से बने हुए थे। वहाँ समस्त सड़कें, व मकान आदि चाँदी तथा स्वर्ण जैसे चमकीले थे। समस्त प्राणी सभी प्रकार की भाषाओं में निपुण थे। वे अपना आकार छोटा–बड़ा करने में सक्षम थे। वहाँ एक दिव्य पुरुष ने मुझे प्रवेश करने से रोक दिया। मैंने कहा मेरे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज हैं तथा दादा गुरु महा प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। यह बात सुनकर वह दिव्य पुरुष विनम्र भाव से मुझे कई दिव्य स्थानों पर ले गया। प्रथम स्थान पर अत्यन्त सुन्दर–सुन्दर युवतियाँ प्रतीक्षा की मुद्रा में बैठी थीं। गुरुदेव भगवान ने मुझे ''धोखा–धोखा'' कहकर सचेत किया।

मिले हों धर्म राज ही जिन्हें गुरु रूप में।
गिर नहीं सकता वो–विकारों के कूप में।।

अतः इन दिव्य दृश्यों में मैंने कोई अभिरुचि नहीं ली। पश्चात् एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ बहुत बड़ा विशाल कार्यालय जैसा चल रहा था। एक ऊँचे सिंहासन पर सांवले रंग का एक व्यक्ति दिव्य–आभूषण पहने ऊँचा स्वर्ण मुकुट लगाए बैठा था। पासपोर्ट साईज से भी छोटे–छोटे जीव दांई–बांई ओर से आ रहे थे। एक व्यक्ति रजिस्टर देखकर जहाँ तहाँ भेज रहा था। यह कार्य तीव्र गति से चल रहा था।

तत्पश्चात् वह व्यक्ति मुझे सुन्दर–सुन्दर सरोवर दिखाते हुए, ब्रह्माजी के पास ले गया। मैंने उनके चारों मुख देखकर प्रणाम किया तो–तत्काल गुरुदेव की आवाज सुनाई दी कि बेटा समय हो गया, चलो! अब मेरा ध्यान टूट गया।

गुरुवचन पलटै नहीं–पलट जाए ब्रह्माण्ड–अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का योग प्रचार कार्यक्रम सन् 1968 में भोपाल में चल रहा था। गर्मियों का समय था। मैं उन दिनों भोपाल में ही एक्साईज अधिकारी के पद पर कार्य कर रहा था। गुरुदेव भगवान मेरे घर मालवीय नगर में ठहरे हुए थे। एक दिन मेरे मित्र एवं आदरणीय गुरुभाई श्री भटनागर ने हाथ जोड़कर गुरु जी से निवेदन किया कि महाराज जी तोमर साहिब की पदोन्नति करवा दीजिए। गुरुदेव जी ने यह बात पूरे ध्यान से सुनी। भटनागर जी पुन: बोले, महाराज जी–हमारी बात कान में डाल लेना। प्रत्युत्तर में गुरुजी मन्द–मन्द मुस्काए और अपने हाथ को चारों ओर घुमाकर अपनी एक अंगुली दाएँ कान में डालते हुए बोले, अच्छा मैंने कान में आपकी बात डाल ली। वहाँ उपस्थित जनों ने इस बात को मजाक–सा समझा–सब मुस्का दिए और बात यहीं पर समाप्त हो गई।

श्री गुरुदेव की भोपाल से विदाई के एक दिन पूर्व आष्टा कस्बे (भोपाल) में स्वागत समारोह था। वहाँ गुरुजी ने अपने प्रवचन में मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा कि हमारा अगला कार्यक्रम इन्दौर में होगा, तब तक तोमर की पदोन्नति भी हो जाएगी। यह आशीर्वाद सुनकर मुझे प्रसन्नता तो हुई लेकिन चिन्ता यह थी कि पदोन्नति का तो प्रश्न ही नहीं होता। क्योंकि एक साथी मुझसे दस वर्ष वरिष्ट एवं राजनैतिक दृष्टि से मजबूत था। शासकीय नियमानुसार विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा दो आदमियों के नाम भेजे गए। इसी मध्य गुरुदेव भगवान का मुझे पत्र प्राप्त हुआ कि हमारे इन्दौर योग प्रचार कार्यक्रम के लिए इश्तिहार आदि तैयार करवा लें और उसकी एक प्रति हमारे पास भेज दें। लौकिक दृष्टि से तो सब हैरान थे कि पदोन्नति तो सम्भव ही नहीं और वह भी इन्दौर जैसे संभाग में, लेकिन पारलौकिक दृष्टि से यह था कि **योगी वचन टलै नहीं – टल जाए ब्रह्माण्ड।**

राज्य मंत्री श्री हरप्रसाद शुक्ला पदोन्नति से सहमत न हुए। मगर वित्त मंत्री श्री के. एल. दूबे सहमत हो गए। अब राज्य मंत्री ने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। अन्त में यह प्रकरण मुख्य मंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ला को प्रस्तुत किया गया। मुख्य मंत्री महोदय ने कड़ाई के साथ अपना निर्णय मेरे हक में दे दिया। यह है सिद्धों के संकल्प के आशीर्वाद का परिणाम। इन्दौर में गुरुदेव भगवान की कृपा बरसी–योग प्रचार कार्यक्रम धूम–धाम से मनाया गया।

ऐसे हैं काल–चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले त्रिजग पावन, परम योग योगेश्वर हमारे आराध्यदेव श्री सद्‌गुरु देव चन्द्रमोहन जी महाराज। 'नास्ति त्वं गुरोः परम' गुरु सत्ता से आगे कोई सत्ता नहीं है।

सुनते हैं तेरी रहमत–दिन रात बरसती है।
तेरी एक मुस्कां से, मेरी तकदीर बदलती है।।

(क्रमश:)

गुरुदेव से ही प्रकाश, मार्ग और सहारा मिलता है

श्री ब्र. ओमप्रकाश पालीवाल (लखनऊ)

मोह–अज्ञान के अन्धकार में ठोकर खा रहे मनुष्य को किसी ने आकर उसका हाथ पकड़ कर दीपक के प्रकाश में रास्ता दिखाता हुआ ले चला। और फिर यदि कभी वह गिरने भी लगा तो उसको सहारा देकर उसे संभाल लिया। ठीक इसी प्रकार गुरुदेव के मिलने पर मनुष्य को ज्ञान का प्रकाश मिलता है, मार्ग मिलता है और सहारा मिलता है।

जिस प्रकार एक पहलवान का शिष्य जब किसी से कुश्ती लड़ता है तो उसका पहलवान गुरु अन्तर ही अन्तर में उसको बल भेजता है उसे जिताने के लिये प्रभु से प्रार्थना करता है। यह पहलवान गुरु का भेजा हुआ बल अवश्य ही शिष्य को मिलता है। जिसके गुरु हैं, वही तो उनसे इस शक्ति को पा सकेंगे। लेकिन जिनके कोई गुरु नहीं हैं, वह इस शक्ति से, सहारे से, वंचित रहेंगे और ऐसे लोग जगत में हार खाकर दुःखी ही रहते हैं। जिस स्त्री का कोई पति नही वह भला किसका सहारा लेगी? वह किससे अपना दुःख–दर्द कहेगी और कौन उसको सांत्वना देगा? उस पतिहीन स्त्री का तो समस्त जीवन दुःख में ही बीतेगा। जैसे पति–पत्नी का जोड़ा है, उसी प्रकार गुरु और शिष्य का जोड़ा है।

सच्चा गुरु भक्त हमेशा, या तो गुरु के साथ रहता है, या गुरु को अपने साथ रखता है। वह कभी भी गुरु से अलग अकेला नहीं रहता। संसार की माया और यह माया रूपी मन इतना ईश्वर से नहीं डरता जितना गुरुदेव से डरता है और मनुष्य का अहंकार भी गुरु से ही भयभीत रहता है, अहंकार की अकड़ गुरु के सामने नहीं चलती, वहाँ वह भी नरम हो जाता है, झुक जाता है। अतः जो शिष्य अपने गुरु की छत्रछाया से जहाँ अलग हुआ कि माया का, मन का आक्रमण उसके ऊपर तत्क्षण हो जाता है। गुरु के साथ या गुरु को साथ में रखने का अर्थ है सतत् अपने गुरु मन्त्र का जप करते रहना। तब मायावी मन का वश उसके ऊपर नहीं चलता। गुरुदेव अथवा गुरु रूप गुरु का मन्त्र शिष्यों को हर आपत्ति–विपत्ति से बचा लेते हैं। असल में गुरु करने का, गुरु पूजा व गुरु मन्त्र जप करने का सबसे अधिक लाभ तो यही है कि एक सर्व समर्थ गुरुदेव की छत्रछाया में रहने से गुरुदेव उसकी

रक्षा करेंगे। जब भी मन में गलत भावना या गलत काम करने का विचार मन में आयेगा उसमें विफलता हो जायेगी। थोड़ी भी चोरी करेगा तो तत्काल पकड़ा जायेगा, तत्काल उसको दण्ड मिलेगा, जिससे वह आगे गलती न कर सके। लोग यही तो कहते हैं कि जो लाखों की चोरी करते हैं, हत्या तक करते हैं वे सुखी रहते हैं, और एक गुरु भक्त, ईश्वर भक्त, कुछ भी गलत करता है, उसे सफलता नहीं मिलती और तत्काल पकड़ा जाता है। सज्जन, गुरुभक्त, ईश्वर भक्त दुखी रहते हैं, दुष्ट, असज्जन सुखी दीखते हैं। इस प्रकार से दुनियादारी वाले लोग बाहर-बाहर ही देखते हैं। अन्तर की ये लोग क्या जानें। उनका दुःखी होना, धनहीन होना, उनके हित में है। वहाँ भी गुरु और ईश्वर की कृपा, शक्ति काम कर रही है कि उन्हें गलत नहीं होने दिया। इस प्रकार गुरु की शक्ति गुरुदेव के सदुपदेश ही तो संस्कार रूप में तुम्हारे हृदय में अंकित हो जाते हैं, वही बुरा करने से तुम्हें रोकते हैं, वही तुम्हारी देखभाल करते हैं जिसने अपने जीवन को यथार्थ रूप से गुरुदेव को, ईश्वर को सौंप दिया तो अब जिम्मेवारी तुम्हारी नहीं रही, अब जिम्मेवारी जिनको जीवन सौंपा उनकी हो गई। सिद्ध समर्थ गुरु श्रद्धालु शिष्यों के मनों में दूर बैठकर सत कर्म करने की, असत कर्म न करने की प्रेरणा भेजते रहते हैं।

गुरु शिष्य का एक तो बाह्य सम्बन्ध होता है शारीरिक सम्बन्ध और दूसरा आन्तरिक, मन का सम्बन्ध होता है। आन्तरिक मनों के सम्बन्ध होने पर दोनों के मन एक होने पर गुरु के मन की बात शिष्य के मन में तथा शिष्य के मन की बात गुरु के मन में आ जाती है और फिर तीसरा अटूट, गहरा सम्बन्ध होता है, गुरु का आत्मीय सम्बन्ध। गुरु के अन्दर जितनी आत्मा से निकटता, एकाग्रता होगी, शिष्य भी उतना ही गुरु में घनिष्ठता करता जायेगा। यदि गुरु का आत्मा से ऐक्य नहीं है तो शिष्य भी कदापि अन्दर से एक नहीं हो सकता।

मनुष्यों को अपना एक गुरु बनाने का प्रयोजन यह है कि जैसे दीपक में तेल, बत्ती सब ठीक सुव्यवस्थित होते हुए भी उसे प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य प्रज्वलित दीपक अथवा दियासलाई की आवश्यकता होती है। जो अग्नि प्रकाशित दीपक में है, वही अप्रकाशित में भी विद्यमान है किन्तु क्या बाहरी सहायता के बिना वह प्रकट हो सकती है? प्रकाशित करने वाले और प्रकाशित होने वाले दोनों दीपकों में एक ही अग्नि है, किन्तु उसका प्राकट्य होने पर ही उसकी अभेदता समझ में आती है। वह ईश्वर सर्वत्र बाहर और सब जीवों के भीतर विद्यमान है। साधक के भीतर भी है किन्तु उसे प्रकट करने के लिए एक ऐसी गुरु-मूर्ति की कृपा की आवश्यकता है जिसके अन्दर वह ईश्वरत्व प्रकट हो चुका हो। यही

गुरु की आवश्यकता है। यह जीव अनादिकाल से अविद्या युक्त है इसलिए उन्हें स्वयं आत्म–ज्ञान नहीं हो सकता। उन्हें ज्ञान देने के लिए किसी अन्य–तत्व ज्ञानी ब्रह्मज्ञानी गुरु की आवश्यकता है। जन्म–जन्मान्तर से तम और रजोगुण के संस्कार एकत्रित होते चले आने से यह जीव माया के गहरे अन्धकार में डूबा हुआ है जिसके कारण उसका ज्ञान विपरीत रूप धारण कर चुका है, अगर किसी समय वास्तविक ज्ञान की झलक उपलब्ध होती भी है तो भी संशयात्मक होने के कारण बुद्धि भ्रम में ही पड़ी रहती है। इसीलिए महापुरुषों ने यहाँ तक स्पष्ट आदेश दिया है कि यदि किसी देवतादि से दीक्षा प्राप्त हो भी जाये तथा साधक की वृत्ति अन्तर्मुखी कार्य करने भी लगे, तो भी मनुष्य शरीर में प्रगट गुरु की कृपा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए, क्योंकि उसके बिना संशय बने रहते हैं और साधन, भजन, तप आदि पूर्णतया फल नहीं दे पाते। कुलार्णव तन्त्र में कहा है–

अदीक्षितः ये कुर्वन्ति जप पूजादिकाः क्रिया।
न फलन्ति प्रिये तेषा, शिलायां सुप्त बीजवत्।।

दीक्षा रहित लोग जो कुछ भी जप, पूजादि क्रिया करते हैं उनको पत्थर पर बोये हुए बीज की तरह उसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार दीपक को माजते रहें, इसमें तेल भी भरते रहें तथा उसमें बत्ती को ठीक–ठीक रखने का प्रयत्न भी करते रहें किन्तु जब तक प्रकाशित दीपक के साथ उसका सहयोग नहीं होता, तब तक उस दीपक से प्रकाश की आशा रखना व्यर्थ है। प्रज्वलित दीपक के साथ उसका संयोग होने पर ही हमारा सारा परिश्रम सफल होता है। गुरु दीक्षा से शिष्य का हृदय–दीप जल कर प्रकाशित हो जाता है। जगत और जीवन में सद्गुरु के बिना अन्धकार ही अन्धकार है, सब दुख ही दुख है, अशान्ति ही अशान्ति है।

ईश्वर की माया बड़ी ही दुस्तर है, गीता में कहा है–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीता अ. 7 श्लोक 14)

के अनुसार ईश्वरीय शक्ति के सहारे के बिना ईश्वर शरणागत हुए बिना, ईश्वर की सहायता, सहयोग के बिना उसे तरने में समर्थ ही नहीं हुआ जा सकता। जहाँ एक ओर ईश्वर की माया जीवों को जगतरूपी चक्कर में भरमाती रहती है, वहीं स्वयं ईश्वर अपने शुद्ध स्वरूप में प्रत्येक जीवों में बैठा हुआ गुरु–कार्य भी कर रहा है।

अर्थात्, माया से बचने के लिए ईश्वरीय प्रकाश भी जीव के अन्दर ही आलोकित है। जहाँ एक ओर ईश्वर की माया जीवों को भरमाती है वहीं वह ईश्वर योगी, सन्त–महात्माओं के अन्दर गुरु रूप में प्रगट होकर जीवों को माया से छुड़ाकर ईश्वर के सन्मुख करता है। अनादिकाल से माया के साथ–साथ ही यह गुरु–कार्य भी चलता आ रहा है। ऐसा कोई समय नहीं जब यह ज्ञान प्रकाशित न रहा हो।

'गु' शब्द का अर्थ अज्ञानान्धकार है और 'रु' शब्द का अर्थ है ज्ञानालोक। इस प्रकार गुरु का अर्थ हुआ जो ज्ञान–दान करके अज्ञान का नाश करे। यह सकल विश्व माया से उत्पन्न हुआ है। इस भाव का प्रतिपादन 'गु' शब्द से समझा जा सकता है। 'रु' कार परब्रह्म तत्व है। उस परब्रह्म के प्राप्त होने पर ही माया के बन्धन से छुटकारा सम्भव है। अतः गुरु के वास्तविक स्वरूप की साधना श्रेयस्कर है। गुरु धन जैसा धन संसार में कहीं अन्यत्र प्राप्त होने वाला नहीं है क्योंकि वह ईश्वर का स्वरूप है। ईश्वर स्वरूप दयालु गुरु के बिना जीव का तीनों लोकों में अपना कोई नहीं है। संसार के सभी सम्बन्ध स्वार्थ अथवा मोह पर आधारित हैं किन्तु गुरु–शिष्य सम्बन्ध केवल शिष्य के कल्याण के लिए ही है। यदि विवेकपूर्वक विचार करके देखा जाये तो गुरु ईश्वर से भी बड़े हैं। जो भगवान की सीधी भक्ति करते हैं उनका पथ कठिन एवम् लम्बा है। किन्तु जिनको गुरु–रूपी भगवान की कृपा प्राप्त होती है उनका आन्तरिक गुरु गुरुदेव की कृपा प्राप्त होते ही जाग उठता है। शिष्य का तन तो दो अति विषैली (अहंकार और मन) बेलों के द्वारा समूचा शरीर व जीवन विषाक्त हो जाता है, विषय विकारों का विष इन्हीं के कारण भरा हुआ रहता है जिनके कारण ही मनुष्य मूर्च्छित होकर विषय भोगों में रत होकर जन्म–मरण रूपी बेल में उलझा रहता है। किन्तु गुरु के शरीर में उनके गुरु द्वारा इन दोनों विषाक्त बेलों को नष्ट कर दिया जाता है और आत्म–तत्व का आत्मा का अमृत प्रगट हो जाता है। इसी कारण से गुरु में अमृत तत्व की खान खुल जाती है। गुरु के आत्म–तत्व के ज्ञान प्रकाश से विषय विकार रूपी बेल जलकर भस्म हो जाती है। अतः गुरु प्राप्ति किसी भी कीमत पर हो कोई महँगी नहीं है। यदि सच पूछा जाये तो गुरु प्राप्ति के लिए अपने सिर के अहंकार को तो काटना ही पड़ता है, अहंकार को समाप्त करना होता है, मन को मारना ही पड़ता है। कबीरदास जी ने कहा भी है–

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।।

वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं जिन्होंने अपने अहंकार रूपी शीश को काटकर गुरु को पा लिया है। अपने गुरुदेव से प्रीति लगाकर सत्य स्वरूप परमात्मा को पा लिया है उन्होंने ही अपने साथ अपने कुल का भी उद्धार कर लिया है। संसारी जीव जब गुरु को न अपनाकर गुरु और शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन करने पर ही काल और माया के मायावी जाल में फँसता है तभी माया जीव पर अपना अधिकार प्राप्त कर लेती है। यदि शिष्य गुरु और शास्त्र की आज्ञा रेखा के अन्दर–भीतर रहे तो माया और काल का दाँव उस पर नहीं चल पाता। कबीरदास ने कहा भी है–

सद्‌गुरु सबद उल्लंघि के, जो सेवक कहि जाय।
जहाँ जाय तहाँ काल है, कहें कबीर समुझाय।।

जिस प्रकार सीता जी लक्ष्मण रेखा को पार करते ही माया रूपी अहंकारी रावण की पकड़ में आ गयीं ठीक उसी प्रकार जीव के लिए अहंकार रूपी रावण तथा मन की माया के बन्धन से मुक्त होने के लिए गुरु और शास्त्र की आज्ञा पालन करना आवश्यक है। गुरु आज्ञा पालन करने से ही गुरु भक्ति और गुरु की शक्ति मिलती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में गिरिमालाओं की तरह एक न एक दुःखद समस्या खड़ी ही दीखती है। इस प्रकार मनुष्य समस्या से सदा घिरा रहता है। अपने उद्धार के लिए कुछ कर नहीं पाता, लेकिन गुरु आश्रय से वह इन समस्याओं से सुखपूर्वक गुजरकर परमात्मा की परम सम्पदा की ओर बढ़ता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि जीवन में किसी ऐसे श्रद्धेय की शरण ग्रहण अवश्य कर ले। जितना शीघ्र हो उतनी किसी सद्‌गुरु की शरणागति ग्रहण कर लेनी चाहिए। जहाँ तुम जी–भरके रोकर अपनी व्यथा सुना सको। ऐसे किसी परम पावन चरणों का सहारा अवश्य प्राप्त कर लो, जो तुम्हारे दुःखी हृदय को सांत्वना दिला सके, जो तुम्हें उचित मार्ग दर्शन कर सके, जो तुम्हें साहस और ढाँढस दिला सके कि तुम चिन्ता, फिकर न करो हम तुम्हारे साथ हैं। इस संसार में गुरुदेव जैसा किसी जीव का सच्चा हितकारी कोई भी नहीं है।

योगमायासमावृतः

–योगाचार्य डॉ. दासलाल जी

भारतीय दर्शनशास्त्र एवं श्रुतियों में जहाँ ईश्वर तत्व का निरूपण किया गया है वहाँ साथ ही साथ 'माया तत्व' का भी विशद विवेचन किया गया है। 'मीयते जगदनया' इति माया अर्थात् जिससे जगत प्रतीत होता है उसे माया कहते हैं। माया के विषय में भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों एवं विचारकों के भिन्न–भिन्न मत हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों के अनुसार भगवान की माया भगवान की अचिन्त्य शक्ति है उस अचिन्त्य शक्ति से बहुत से जीव उत्पन्न हो जाते हैं। परमार्थ वस्तु में उत्पादन सामर्थ्य का नाम ही माया है। भगवान शंकराचार्य मत में माया का स्वरूप इससे भिन्न माना जाता है। उनके अनुसार अविनाशी परमात्मा में दूसरी वस्तुओं को दिखाने के लिए कल्पित शक्ति का नाम माया है। परमात्मा की यह सहज स्वाभाविक शक्ति नहीं अपितु अध्यारोपित शक्ति है। यह कोई वस्तु उत्पन्न नहीं करती केवल उन्हें परमात्मा में दिखाती है। जब अज्ञान की निवृत्ति हो जायेगी तो माया भी निवृत हो जायेगी।

माया और अविद्या यद्यपि समानार्थक से शब्द हैं किन्तु इनके मौलिक स्वरूप में बहुत अन्तर है। माया ईश्वरकृत है, अतः यह समष्टिगत है। जबकि अविद्या जीवकृत है, अतः व्यष्टिगत है। विवेकख्याति अथवा विद्या से अविद्या नष्ट हो जाती है किन्तु उससे माया की समाप्ति नहीं हो जाती परन्तु विवेकख्याति युक्तपुरुश के लिए माया अब दुःखदायी नहीं रहती। योगदर्शन में भगवान पतञ्जलि देव जी ने इस सिद्धान्त का संकेत स्पष्ट रूप से देते हुए कहा है। 'कृतार्थम् प्रति नष्टमप्यनष्टम् तदन्यसाधारणत्वात्' अर्थात् कृतार्थ व्यक्ति के लिये अविद्या नष्ट होते हुए भी अन्य अज्ञानी व्यक्तियों के लिये वह विद्यमान रहती है।

श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान ने माया तत्त्व का विस्तृत रूप से निरूपण किया है। भगवान ने आत्ममाया, मम माया आदि शब्दों से इसे अपनी माया कहकर पुकारा है। अपने को व्यक्त अथवा प्रकट करने के माध्यम का संकेत करते हुए भगवान कहते हैं कि मैं अजन्मा अविनाशी तथा सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी प्रकृति को आधीन करके अपनी माया से प्रकट होता हूँ। प्रकट हो जाने पर भी मुझे हर व्यक्ति ईश्वर के रूप में नहीं जान सकता क्योंकि भगवान कहते हैं।

नाहं प्रकाशः सर्वस्व योगमाया समावृतः।

मैं प्रकट हो जाने पर भी सबके लिये प्रकट नहीं रहता हूँ। जो अधिकारी है अथवा जिसे मैं चाहता हूँ उसे ही अपना रूप दिखाता हूँ सभी को नहीं। इस कार्य को सम्पादित करने के लिये मैं योग माया का सहारा लेता हूँ, इसी से अपने को ढक लेता हूँ। भगवान के उपर्युक्त वचनों से निष्कर्ष यह निकलता है कि योग माया वस्तुतः भगवान की इच्छा शक्ति का ही नाम है। गीता में भगवान ने प्रकृति के रूप में माया के दो स्वरूप बताये हैं। एक माया का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप है जिसे अव्यक्त या पराप्रकृति के नाम से कहा गया है। कल्पों के अन्त में सभी प्राणी इस मूल प्रकृति में लय हो जाते हैं। सृष्टि के आदि में सभी चराचर प्राणी उसी प्रकृति से उद्भूत होते हैं। यह सर्व कार्य भगवान की अध्यक्षता में सम्पन्न होता है। इसी क्रम से यह संसार चक्र घूम रहा है। इसी मूल प्रकृति को भगवान ने महद्ब्रह्म की संज्ञा दी है। यही मूल प्रकृति सम्पूर्ण प्राणियों को धारण करने का स्थल है। महद्ब्रह्म ही माता है तथा भगवान बीजाधान करने वाले सम्पूर्ण चराचर के पिता हैं ऐसा कहा है। योग माया अथवा मूल प्रवृत्ति से त्रिगुणात्मिका प्रकृति समुद्भूत होती है। महद् ब्रह्म या मूल प्रकृति अव्यक्त तथा अनादि है। जीव के मन बुद्धि को व्यामोह में डाल देने वाली त्रिगुणात्मिका माया को पार करना बहुत ही दुस्तर है। इसी त्रिगुणात्मिका माया से मोहित हुआ जीव अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता। सांख्य-योग में प्रकृति को माया माना गया है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।

अर्थात्, प्रकृति का नाम ही माया है तथा मायापति महेश्वर है। सांख्यमत में प्रकृति अन्धवत् तथा पुरुष (आत्मा) पंगुवत है। इन दोनों के परस्पर सहयोग से सृष्टि चलती है। गीता में भी इस बात का संकेत है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के सहयोग से सृष्टि चक्र चलता है।

वस्तुतः योग माया परमात्मा की योग विभूति व योगैश्वर्य ही है। योग शक्ति से जिस माया का विस्तार होता है वही ईश्वरीय योगमाया है। शक्ति से शक्तिमान अभिन्न होता है। ईश्वर के योग विभूति को जितना जितना कोई जानने लगता है वह उतना ही योगनिष्ठ अथवा परमात्मनिष्ठ होता चला जाता है। यह परमात्मा की ही महिमा है जो समस्त सृष्टि का एकमात्र स्वामी होने पर भी अपने को छिपाये रखता है। वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता है।

योगी की योगमाया को पार करने के लिये भगवान गीता में योग के माध्यम से भगवद्प्रपन्न होने की बात कहते हैं। योगी योग साधना के माध्यम से त्रिगुणात्मिका माया से सहज ही पार निकल जाता है। समाधि गुणातीत हो जाने की प्रक्रिया है, जहाँ माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे इतरावस्थाओं में माया दुःखकारी ही है सुखकारी नहीं। अतः निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि योगमाया से समावृत ईश्वर योग साधना से ही अधिगम्य एवं सम्प्राप्तव्य है।

गुरु-शिष्य एकात्मत्व

सौ० कविता शर्मा (जयपुर)

एक हृदय में दो। यह संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है क्योंकि वही गुरु है, वही शिष्य! दोनों में कोई दूरी ही नहीं। एक ही हृदय में क्रियाशील आनन्द के महासागर में विलुप्त आकण्ठ निमग्न तैरते हुए और रसाप्लावित होते हुए। गुरु कहीं से आये नहीं, गुरु ने प्रवेश नहीं किया। बस हुआ यह कि श्री गुरुदेव आत्मस्थ थे, उनकी पहचान हो गई, उनसे परिचय हो गया, क्षण-क्षण का साथ हो गया, एक-एक पल बात करने की कला जान ली। अपनी कहने की और उनसे सुनने की शैली सीख ली, रूठना भी सीख लिया और जिद करना भी, मनुहारें भी कर लीं और समझाना समझाना भी। यही गुरु शिष्य का प्रेम है। कोई इसमें कभी भी विलुप्त नहीं होगा क्योंकि एक ही हृदय में जो दोनों को रहना है। दूर वह रह भी कैसे सकता है। गुरु ने तो अपना अस्तित्व ही नहीं माना कि मैं अपने शिष्य के बिना कुछ हूँ। यही गुरु की विशेषता है। वार्तालाप भी आवश्यक नहीं, बोलकर कुछ कहना भी आवश्यक नहीं, कहीं जाने की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि-

जाके गुरु परदेस बसत हैं,
लिख-लिख भेजे पाती।
मोरे गुरु मोरे हिय बसत हैं,
मैं कहुं आती न जाती।।

दूरियाँ समाप्त हो जाती हैं और विराट पथ पर चलने के लिये कोई चिरसंगी मिल जाता है, कोई सखा बन जाता है और बन्धु भी। क्योंकि यह पथ सामान्य से कहीं ज्यादा लम्बा है, सामान्य से ज्यादा कठिनाइयों से भरा है, सामान्य से ज्यादा कांटे इस पर बिछे हैं और पग-पग पर ठोकरें भी तो हैं। आत्मस्थ गुरु जागृत हुआ नहीं कि एक-एक क्षण पर ठोकरें मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं लेकिन इन ठोकरों की पीड़ा में भी सुख है। जीवन मधुर तन्द्रा में भी सोते-सोते गुजर जाता है लेकिन उस व्यामोह से भरी नींद के पश्चात् उदासी ही रहती है। इसमें ऐसा नहीं है। इसमें चिरसंग है और नित्य संग होने का उत्संग है। बिना किसी प्रदर्शन के बिना किसी को कहे और मौन भी बहुत कुछ कहता ही है यदि मौन की भाषा समझी हो। संसार का सर्वश्रेष्ठ वार्तालाप प्रेम की सबसे मधुर बातें मौन से ही होती हैं।

दादागुरु एक बार अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे और कुछ दूरी पर ही एक प्रसिद्ध सूफी सन्त भी ठहरे थे। शिष्यों के मन में विचार आया कि यदि ऐसे दो श्रेष्ठ विद्वान

आपस में वार्तालाप करें तो उनके सत्संग से हमें अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होगा। प्रयास कर दोनों के शिष्यों ने उनकी भेंट कराई। सूफी सन्त मौन बैठे रहे। दादा–गुरु के चेहरे को देखकर आह्लादित होते रहे और दादागुरु भी मन्द मुस्कान से उन्हें निहारते रहे. एक घण्टे के पश्चात् दादागुरु ने कहा–आपने कितनी सुन्दर बातें कहीं, प्रत्युत्तर में सूफी सन्त बोले आपका बयान भी तो बेमिसाल था।

सन्तों की भाषा ऐसी ही होती है और इसी से ऐसे व्यक्तित्व कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह जाते हैं, जीवन की शैली सिखा जाते हैं। पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत कम कहा है, बहुत ही दुर्लभ अवसरों पर कुछ स्पष्ट रूप से बोले हैं। कुछ कहने और प्रचारित करने की अपेक्षा उन्होंने हर हृदय में प्रवेश कर उसे बताया है कि तुम्हारे अन्दर ही सब कुछ व्याप्त है। एक–एक शिष्य को मौन बात करने की कला सिखाई है एक–एक शिष्य को पुष्प के रूप में बदला है, उसके अन्तस में छाया विष और दुर्गन्ध दूर कर उसे एकाकीभाव से सुनते रहने की कला सिखाई है और वह भी इस झुलसते हुए रेगिस्तान जैसे समाज में। इसी में जो वे कहते हैं कि मैंने बहुत परिश्रम कर गुलाब की कलमें रोपी हैं तो उसमें और अतिशयोक्ति नहीं।

और सचमुच वे शिष्य उनके पसीने की बूँदों से ही सिंचित हुए हैं, अपने गुरु के प्रतिरूप बने हैं। पूज्य पाद गुरुदेव ने अपने शिष्यों में कोमलता और तीक्ष्णता का अद्‌भुत समन्वय किया है। उन्होंने अपने शिष्यों में केवल शिष्य ही नहीं बल्कि अपने प्रतिरूप भी तैयार किये हैं जो उनके मन्त्रजात पुत्र हैं, जिनकी आँखों में स्वप्न हैं गुरु की चेतना है और सुगन्ध फैलाने का संकल्प। कितनी विषमताएँ झेली हैं उन्होंने अपने जीवन में, इसका अल्पज्ञान ही यदि हमको हो जाये तो सारा शरीर और मन पीड़ा से दग्ध हो जाता है। लेकिन कुछ व्यक्तियों से एक आशा होती है, जीवन के प्रति एक संकल्प होता है और अपना सब कुछ लुटाकर भी कुछ देने का जो भाव होता है वही व्यक्ति को विष पीने के लिए भी सक्षम बना देता है।

माता–पिता की क्या आकांक्षा होती है बस यही कि मेरा शिशु, मेरी सन्तान सुख प्राप्त करे। गुरु–शिष्य सम्बन्ध भी केवल इसी रूप से समझा जा सकता है। यद्यपि माता–पिता के सम्बन्ध फिर भी स्वार्थपरक और कामना से युक्त हो सकते हैं, लेकिन गुरु शिष्य के सम्बन्ध तो ऐसे हो ही नहीं सकते, यह कोई नई बात नहीं है।

समाज गुरु के कार्यों का मूल्यांकन नहीं कर पा रहा है और ''मूल्यांकन'' शब्द तो एक अपूर्ण शब्द है क्योंकि वास्तव में उनके कार्यों का मूल्यांकन तो सामान्य मनुष्य के द्वारा सम्भव ही नहीं। उनकी चेतना यदि एक बार ज्ञात हो जाये तब भी बहुत कुछ घटित हो जायेगा

व्यक्ति के मन व शरीर में, क्योंकि वह कोई सामान्य चेतना नहीं है, जीवन को झकझोर कर रख देने की क्रिया है, आग्रह करके व्यक्ति के हृदय में उतर जाने की प्रक्रिया है। इसका अर्थ तो वही समझ सकता है जिसने कभी जीवन में कुछ ऐसा प्राप्त करने का सुख जाना है।

यह एक ऐसे अमृत का स्वाद है जिसकी सार्थकता बाँटने में ही होती है और इसी में इसकी तुलना केवल पुष्प से की जा सकती है जो अपनी सुगन्ध बिखेरता ही रहता है, अपने बीज छोड़ देता है हवा में निर्मुक्त कि वे हवा के झोंकों के साथ उड़ें और दूर–दूर तक जाकर अलग–अलग खेतों में गिरकर पौधा बने, सुगन्ध बिखेर दे और ऐसी ही क्रिया सम्पन्न हो रही है, पूज्य गुरुदेव द्वारा निर्मित शिष्य पर जो उन्हीं के अंश से उत्पन्न हुए उन्हीं के बीज हैं।

पूज्य गुरुदेव ने इस संसार के कीचड़ में ऐसे ही कमल पुष्प विकसित किये हैं जिनकी सुगन्ध से आज भी वातावरण स्निग्ध है। आज भी ज्ञान व साधना की लुप्त होती परम्परायें जीवित हैं और स्पष्ट हैं। गुरु की सुगन्ध ही जिनमें प्रवाहित हो रही है और शिष्य का आनन्द यह है कि गुरु चलते हैं तो शिष्य भी चलता है। गुरु बोलते हैं तो शिष्य भी बोलता है, गुरु हँसते हैं तो शिष्य भी हँसता है। खाना–पीना, उठना–बैठना सब कुछ गुरुमय हो जाता है, अपने को समाप्त करने का आनन्द आ जाता है, मन में तृप्ति आ जाती है।

लेकिन गुरु रूपी बीज को प्रवेश देने के लिये एक बीज डालने भर की जगह देनी पड़ती है जिससे वही बीज अपने अन्दर विषमताओं और मलिनताओं के कीचड़ में कमल बनकर सुगन्ध से भर दे सारे वातावरण को। बीज तो खुद तैयार है हमारे अन्दर व्याप्त कीचड़ में पनपने के लिये, कमल बनने के लिए। कम से कम अंकुरित होने का एक अवसर तो दें।

सन्त वचन

जो सब कुछ धारण कर रहा है, जिसमें जन्म, मृत्यु, सृजन, प्रलय सभी कुछ चल रहे हैं वही परमात्मा ईश्वर है।

जिसके होने से ही देखना, सुनना आदि इन्द्रियों के तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के सभी व्यापार चल रहे हैं वही नित्य परमात्मा परमेश्वर है वह अभी है, यहीं है, सर्वत्र है, सर्वदा है, सभी का सर्वस्व है सब उसी परमात्मा में ही है। अपने को उसी में अनुभव करो। *(दिव्य मंत्रणा से)*

श्रद्धा और विश्वास—एक अनिवार्यता

श्री द्वारिका प्रसाद शर्मा

'प्रिया निकुञ्ज' 306—ए (अभिषेक) एण्डिको उदयन—दो,

उतरेटिया, (रायबरेली रोड) लखनऊ

श्रद्धा और विश्वास इन दो शब्दों का यदि सम्यक् रीत्या विवेचन किया जाये तो इन दोनों शब्दों में अन्तर्निहित महान् शक्तियों की प्रतीति निश्चित रूप से होगी। यही दो शब्द ऐसे हैं जो अमूर्त को भी मूर्त रूप प्रदान करने की सामर्थ्य अपने अन्दर समाविष्ट किये हुए हैं। स्थूल दृष्ट्या तो हम मात्र उन पदार्थों का बोध करने में समर्थ होते हैं, जहाँ तक हमारी चाक्षुष इन्द्रिय की सीमा है। परन्तु ऐसे तत्व हैं जो अव्यक्त हैं और स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकते हैं उनके लिये हमें श्रद्धा और विश्वास—इन दो शब्दों के माध्यम से ही, उस अगोचर तत्व को गोचर कर लेने की सामर्थ्य प्राप्त हुआ करती है।

जैसा कि आप, हम, सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की योनि में पदार्पण तथा उसके साथ, अच्छे कुल में संस्थिति, आचार एवं विचारों की श्रेष्ठता, सद्बुद्धि का विकास, विवेक, आस्तिकता इत्यादि गुणों का समाकाय ही मनुष्य योनि की उत्कृष्टता के स्तम्भ हैं। इन्हीं के अवलम्ब से पूर्व जन्मोपात संस्कार भी यदि तदनुरूप श्रेष्ठ हों तब तो 'सोने में सुहागा' की लोकोक्ति चरितार्थ होने की बात सिद्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जीवन की सार्थकता, यह निर्विवाद है, आत्म साक्षात्कार कर लेने में ही है। आत्मिक गुणों के संचार तो तदनुकूल आचरण कर लेने में ही निहित हुआ करते हैं।

यह भी विवेच्य है कि स्थूल से हम जितना सूक्ष्म की ओर अग्रसर होते हैं, उतना ही हमें स्वयं में भी उसी के अनुरूप सूक्ष्म—मनन, सूक्ष्म—चिन्तन तथा सूक्ष्म—आत्म विश्लेषण की आवश्यकता हुआ करती है। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार से भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार से आत्म तत्व अदृश्य, अव्यक्त, अगोचर, अपरिमेय, निर्विकार आदि अनेक सूक्ष्मभिधानों एवं विशेषणों से अभिवाच्य है यदि उसके अवबोध के लिए भी हमें उस आत्म तत्व की अभिव्यक्ति हेतु अपने अन्दर उन—उन गुणों के समावेश हेतु किसी भी प्रक्रिया का अवलम्ब लेना होगा। वह प्रक्रिया—विशेष प्रकार के योगों के अनुसार भिन्न—भिन्न रूप में शास्त्रों में वर्णित है।

योगान्त अनेक शब्द देखने को मिलते हैं। यथा—ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, वैराग्य योग, प्रेमयोग, राजयोग, हठयोग, सिद्धयोग, आदि—आदि। इस लेख का प्रतिपाद्य विषय इन योगान्त शब्दों की व्याख्या का नहीं है परन्तु हाँ, इतना तो अवश्य ज्ञातव्य है कि प्रत्येक उपर्युक्त

योगान्त योगों का मात्र लक्ष्य मनुष्य को उसकी स्वभावज रुचि के अनुसार एक ही अभीष्ट गन्तव्य तक ले जाना है। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः'' के अनुसार रुचि–वैभिन्य होते हुए भी सभी का गन्तव्य एक ही है और वस्तुतः वह है आत्म तत्व को परमात्मा तत्व तक पहुँचाने का एकमेव श्रेयस्कर मार्ग।

आत्म तत्व की उपलब्धि यद्यपि एक दुरूह तथा कठिन मार्ग है परन्तु ऐसा नहीं है कि असम्भव हो। पूर्वकाल में हमारे ही पूर्वजों ऋषि–महर्षियों, सन्तों तथा महात्माओं ने स्वानुभूत तत्वों का दिग्दर्शन कराया है तथा वहाँ तक पहुँचने के अपने अनुभवों को विविध ग्रन्थों में विस्तृत विवेचन के साथ प्रस्तुत भी किया है। यह ऐसा विषय है जिसका अभिव्यक्तिकरण शब्दों के माध्यम से उतना सुशक्त नहीं जितना कि स्वयं अनुभव की कसौटी पर खरा उतरने के पश्चात् सम्भव है। इसका अभिव्यक्तीकरण गूँगे द्वारा गुड़ के स्वाद के वर्णन करने के समतुल्य है। स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम निष्कर्षों का विवेचन उन्हें ही सुबोधगम्य हो भी सकता है जो स्वयं उस स्तर तक अनुभवशील हो चुके हैं। इसके लिये किसी भी योग में प्रवेश से पूर्व उसके प्रति अपार निष्ठा, श्रद्धा एवं विश्वास का होना एक अनिवार्य अंग है। सन्त प्रवर तुलसीदास जी ने श्रीमद्रामचरित मानस के आरम्भ में ही इन दो शब्दों का निरूपण इस प्रकार किया है–

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।।

कितना हृदयग्राही, विशद एवम् सूक्ष्म–संक्षेप में तुलसीदास जी ने हमारे सम्मुख अपने द्वारा अनुभूत सत्य का प्रस्तुतीकरण किया है। इसमें वर्ण्य तथ्य हमारे सामने आ रहे हैं। भवानी शक्तिरूपा, मातृरूपा, श्रद्धा का स्वरूप बतलाई गई है। ''श्रद्धा'' शब्द व्याकरण की दृष्टि से स्त्रीवाची शब्द है ही। 'विश्वास' शब्द 'पुल्लिंग' होते हुए शंकर भगवान के निमित्त प्रयुक्त है। श्रद्धा शब्द की व्युत्पत्ति कुछ इस प्रकार है–

श्रद्धा–श्रत् + धा + अङ् + टाप् से व्युत्पन्न श्रद्धा शब्द की रचना हुई है। ''धा'' धातु के पूर्व में श्री में उति प्रत्यय से श्रत् शब्द बना। श्रत् शब्द अव्यय एवम् उपसर्ग दोनों के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ निष्ठा, आस्था तथा भरोसा आदि हैं।

विश्वास–शब्द की व्युत्पत्ति में ''वि'' पूर्व उपसर्ग रूप में प्रयुक्त है और 'श्वास' शब्द साधारणतया प्रयुक्त सांस के अर्थ में ले लेने से विशिष्ट प्रकार के उस श्वास के नैरन्तर्य से है जो निर्बाध गति के जिस किसी भी परिस्थिति मे प्रवहमान रहता है। इसी सीमा तक विश्वास की पराकाष्ठा मनुष्य मात्र के मार्ग को प्रशस्त न करे, ऐसा कदापि सम्भाव्य नहीं है।

इस प्रकार की श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता है इस क्षेत्र में प्रविविक्षुओं के लिये और फिर अन्तस्थ ईश्वर की खोज सुलभ एवं सुगम हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं रह जाती। आवश्यकता मात्र है साधक विशेष के श्रद्धा तथा विश्वास की ही।

'पातञ्जल योगदर्शन' में श्रद्धा की व्याख्या करते हुए महामुनि व्यासदेव अपने मुखारविन्द से कहते हैं– ''मातेव श्रद्धा योगिन पाति'' अर्थात् माता की तरह से श्रद्धा योगी की रक्षा करती है। जिस प्रकार से एक माता वात्सल्य भाव में पग–पग पर बच्चे की देख–भाल करती है उसी प्रकार अटूट श्रद्धा भी वही मातृवत् वात्सल्य एक योगी की निष्ठा व श्रद्धा के रहते हुए करती है।

श्रीमद्भगवद् गीता में तो स्थान–स्थान पर श्रद्धा शब्दों का दर्शन होता है। भगवद्गीता के छठवें अध्यायान्तर्गत अन्तिम दो श्लोक द्रष्टव्य हैं–

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां, मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां, स मे युक्ततमो मतः।।

(गीता 6/46–47)

अर्थात्, तपस्वियों में श्रेष्ठ योगी होता है। ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ योगी का स्थान है। स्वकर्मीपरायण लोगों से भी ऊँचा स्थान योगी का होता है। अतः हे अर्जुन! तुम योगी बनो।

इसी क्रम में उसके अग्रिम श्लोक का अर्थ इस प्रकार है–

सभी योगियों में भी जो अन्तरात्मा से मुझ में लीन है और जो श्रद्धापूर्वक मेरा ही ध्यान करता है वही युक्ततम योगी है। कहने का अभिप्रायः यह है कि श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है।

इसी प्रकार से श्रीमद्भगवद्गीता में भगवद्वचन कितने विशद रूप से अंकित हैं–

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात् यह चैतन्य विशिष्ट आत्मतत्व श्रद्धामय ही है। जिसकी जहाँ श्रद्धा होती है वह वही हो जाता है।

इसके अतिरिक्त आप सभी विद्वान् महानुभाव इससे भलीभाँति अवगत ही हैं कि भगवद्गीता का सत्रहवाँ अध्याय तो श्रद्धात्रय विभाग योगो नाम से ही अभिहित किया गया है।

अधिक विस्तार से अच्छा होगा कि संक्षेप में हम यह जान लें कि श्रद्धा और विश्वास दो ऐसे रत्न हैं जिनके आलोक से उन्नति के सोपानों पर मनुष्य अग्रसर होते हुए अपने गन्तव्य लक्ष्य को अवश्यमेव प्राप्त कर ही लेते हैं। हाँ, इतना जरूर है कि श्रद्धा और विश्वास हो तो हमारे आराध्यदेव, सकलगुण निधान, करुणार्णव, अनन्तश्री विभूषित योगिवर्य श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सदृश, जो अपने गुरुदेव के प्रतिवाक्य का अक्षरशः पालन करते हुए हम सबके लिये एक ज्वलन्त आदर्श स्थापित कर हमारा मार्ग प्रशस्त कर चुके हैं। हम सब धन्य हैं जो उनके चरण–कमलों के सान्निध्य–सौभाग्य से ओत–प्रोत रहे हैं और कृतकृत्य हुए हैं।

हमारा आचरण हमारी श्रद्धा एवं विश्वास उनके प्रति भी अटूट श्रद्धा एवं विश्वास में परिणत होता रहे, हम सब उनके इसी कृपाप्रसाद के सतत् अभिलाषी हैं।

कबीर और योग

श्री ब्र. बृजमोहन वाशिष्ठ

सन्त शिरोमणि कबीर दास जी यद्यपि पढ़े–लिखे नहीं थे किन्तु जैसा उनके जीवन से परिचय मिलता है उसके अनुसार यह मानना पड़ेगा कि वह एक उच्चकोटि के अनुभवी सन्त थे जिन्हें आज का, पढ़ा–लिखा समाज अभी तक समझने की चेष्टा करते हुए भी नहीं समझ पाया है। उनकी रचित साखियों व अन्य प्रकार की रचनाओं में यह स्पष्ट रूप से दिखायी देता है कि वे कितनी गहराई में बैठ चुके थे। उनका प्रारम्भिक जीवन अधिकतर साधु–सन्तों की संगति में ही व्यतीत हुआ था जिनकी सेवा में वे हर समय लगे रहा करते थे। उनके मन में एक प्रकार की धुन सी लगी रहती थी कि कब उन्हें सद्‌गुरु की चरण–शरण मिले और अपने जीवन को धन्य बना सकें। अत: साधु–सन्तों की सेवा के फलस्वरूप उन पर ईश्वर की कृपा हुई और स्वामी रामानन्द के रूप में उन्हें सद्‌गुरु की प्राप्ति हो गई।

स्वामी रामानन्द की शरण में जाने पर ही उन्हें अनुभूति मार्ग का दर्शन हुआ और वह कह उठे–

कबीर सेवा को दो भले, एक सन्त एक राम।
राम तो दाता मुक्ति के, सन्त जपावे नाम।।

इस प्रकार वह गुरुमहिमा का मान करते हुए आगे बढ़ते रहे और योग की मस्ती में अपने परम लक्ष्य को पाने हेतु झूम–झूम कर गाने लगे–

कौन मिलावे मोहि जोगिया,
जोगिया बिन रहा न जाय।।

उनकी ऐसी दृढ़ लगन ने उन्हें नाथ सम्प्रदाय के महान योगिराज गुरु गोरक्षनाथ से मिला दिया तब उनका सम्पूर्ण जीवन ही योगमय हो गया। ज्ञान योग, हठयोग, सुरतियोग, सहज योग, भक्तियोग आदि जितने भी योग के व्यापक शब्द हैं, उन सब का इनके जीवन में भली प्रकार समावेश हो गया। ज्ञान मार्गी लोगों को उनके जीवन में ज्ञान–योग की झलक मिल जाती है जैसाकि स्थान–स्थान पर उन्होंने ब्रह्म का निरूपण करते हुए कहा है–

खण्डित मूल निवास कहो, किमि विगहत कीजै।
ज्यूँ जल में प्रतिबिम्ब, त्यूँ सकल रामहि जाणि जै।।

इस ब्रह्म की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है व अन्त में उसी में लय हो जाती है। जिस प्रकार

सोने से कुण्डल बनते हैं और यदि कुण्डल पिघल जाते हैं तो फिर पूर्ववत् सोना हो जाता है। कबीरदास कहते हैं–

जैसे बहु कंचन से भूषण, कहि गालि तब वहिगे।
ऐसे हम लोक वेद के, विछुर सुत्रिहि समायहिगे।।

जीव और ब्रह्म में भेद केवल माया के ही आवरण से जान पड़ता है और यह आवरण अविद्या का रूप है। इसके हटने पर कोई भेद नहीं रहता। यह भाव निम्न पंक्तियों में कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है कि–

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूट कुम्भ जल ही समाना, यह तथ कथो गियानी।।

अज्ञान के दूर होने पर ही माया, भ्रमजाल हट जाते हैं।

सन्तो भई ग्यान की आंधी।
भ्रम की टाटी सभी उड़ानी।
माया रहे न बाँधी।।

कबीर का ज्ञान अनुभवहीन ज्ञान नहीं था। गुरु गोरक्षनाथ के सम्पर्क में आकर उनका जीवन और भी चमत्कारिक बन गया था। वे हठयोग की साधना से भी अछूते नहीं रहे। उन्हीं के शब्दों में स्पष्ट हो जाता है–

एक साल मैंने खेती बोई, गंगा जमुना रेती।
राम नाम को बीज पड़ो है, उपजे हीरा मोती।।
काम क्रोध जीतो रे भैया, ममता करली थोथी।
उड्डियान जाके नागन को, जगाती अमृतधार निचोती।।
प्राण अपान मिलाकर प्यारे, करलो नेति धोती।
गगन–मण्डल में जाकर देखो, चमक रही एक जोती।।
सुरत निरत के बैल बनालो, जब चाहो तब जोति।
कहे कबीर सुनो भाई साथी, बिरला जाने रीति।।

उक्त पद से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने हठयोग की भली प्रकार साधना की। उड्डियान बन्ध नागिन (कुण्डलिनी) प्राणायाम, नेति, धोति उचित शब्दों का प्रयोग उचित प्रकार से एक योगी ही समझा सकता है। इतना ही नहीं कबीर ने कुण्डलिनी जागरण द्वारा अमृतपान करने की व नाना चक्र भेदन करने की चर्चा कितने निराले ढंग से की है, वे कहते हैं–

''वक्र नालि के अंकरे पश्चिम दिशा की वाट रे
नीझरं झरे रस पीजिये तहाँ भंवर गुफा के घाट रे
त्रिवेणी यह न्हाइये सुरति मिले जो हाथ रे''

इस प्रकार का वर्णन एक योगी ही कर सकता है। योग–साधना के द्वारा कबीरदास ने उस परम दिव्य जोति का दर्शन कर अपने को कृत्य–कृत्य कर लिया। वे कहते हैं–

चन्दा झलकै घट माहीं, अन्धी आँख सूझे नाहीं।
यही घट चन्दा यही घट सूर, यही घट गाजे अनहद नूर।।
यही घट बाजे तबल निशान, बहिरा शब्द सुने नहीं कान।
अनहद बाजे नीझर झरे, उपजे ब्रह्म ज्ञान।
अवगति अन्तरि प्रगटे, लागे प्रेम ध्यान।।

इनकी इन रचनाओं से हमें पता चलता है कि वे एक ऊँचे दर्जे के योगी थे। नीचे लिखा पद भी योग को प्राप्त कर जन्म के चक्र से छुटकारा पाना दर्शाता है यथा–

सत्गुरु तेरी रे अटरिया, झिलमिल–झिलमिल होय।
ऊँची अटरिया चन्दन किवरिया, रही नेन में जोय।।
पहुँचेगा कोई सन्त विवेकी, कुटिल, कुमति निज खोय।
चाँद सूरज दो मारग कहिये, रहे गगन में सोय।।
भृकुटी मध्य जपो सुमिरिनी, पवन सूत में पोय।
गगन न गरजे धरिनी न लरजे, बादल बूँद न होय।।
आठ पहर जहाँ अमृत वर्षा, पीकर हंस अघाय।
कहत कबीर सुनो भाई साधू, गुरु से मिले सब कोये।।
जो सत्गुरु का दर्शन पावे, जन्म–मरण ना होय।।

इस खोजबीन में कबीर दास जी लययोग अर्थात् सुरतियोग, निरति योग आदि योग के पहलुओं से निकले। यह सभी योग का अध्यात्म रूपान्तर था। अन्त में वे सहज योग को प्राप्त हो गये और अजपाजप को ही प्रधानता देते हुए लिखा कि–

अजपा जपत सुनि अभिअतरिय हु तत जान सोई।

सहज योग वर्णन करते हुए उन्होंने मन की साधना को ही सर्वश्रेष्ठ माना है क्योंकि इसके निरोध से इंद्रियाँ अपने–अपने विषयों से दूर रहेंगी और फलतः साधक काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों से दूर रहेगा। ऐसे ही योगी का वर्णन करते हुए कबीर जी ने लिखा है कि–

अवधूत योगी जग से न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी
नादन बड़े धारा।।
बसे गगन में धूनि न दीखे
चैतनि चौकी पसारा।
चढ़ि आकाश आसन नहि छाड़े
पीवे महा रस मीठा।।
परगट कथा माहे जोगी
दिल मे दरपन जाये।
सहस इकीस छः सौ धागा
निहचल नाके पोवै।।

सच्चे आत्म–समर्पण के द्वारा ही मोक्ष–दाता योग मनुष्य को प्राप्त होता है। वैराग्य और श्रद्धा जीव को उसके परम लक्ष्य तक पहुँचा देती है, ऐसी अपने इष्ट के प्रति अटूट श्रद्धा–भक्ति का होना परम आवश्यक है। इसका परिचय उनके जीवन में भली प्रकार मिलता है।

राम नाम जप नीच
जिन पर राम भक्ति नहीं साधी
जनमत कस न मुओ अपराधी।।

इस प्रकार हम पाते है कि कबीर दास जी ने अपने जीवन में योग के सभी पहलुओं को अपनाकर योग की वास्तविकता का दर्शन करा दिया। ज्ञानयोग, हठयोग, लययोग, सहजयोग, भक्तियोग आदि अलग–अलग विषय नहीं। उन्होंने संसार के भूले–भटके प्राणियों को सत्य–मार्ग दर्शन कराया। यह योग शक्ति का ही प्रभाव था कि वह निरक्षर होते हुए भी महान सन्त कहलाये। योग प्राप्त हो जाने पर सभी विद्यायें स्वयं प्रकाशित हो जाती हैं।

भक्ति

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्री जयदयालजी गोयन्दका

श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद ने अपने पिता के प्रति भक्ति के लक्षण बतलाते हुए उसके नौ भेदों का वर्णन किया है–श्रवण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

इन नौ प्रकार की भक्तियों में एक को भी अच्छी तरह धारण करने से प्रायः सभी भक्तियाँ अपने–आप आ जाती हैं, इसलिये इनमें से एक का भी भलीभाँति पालन करने से परमात्मा की प्राप्ति सहज में ही हो सकती है।

अपने जो इष्ट हों, उन देवी या देव को परमेश्वर समझकर निष्काम–प्रेम भाव से सभी अंगों सहित उनकी भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार करने से अपने इष्टदेव का साक्षात्कार होकर परम शान्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

भगवान् का चिन्तन करने से तो समस्त पापों का, अवगुणों का और दुःखों का नाश होकर उत्तरोत्तर परमानन्द एवं परम शान्ति की वृद्धि होती जाती है। आरम्भ से लेकर अन्त तक साधन और सिद्धि में आनन्द–ही–आनन्द है।

प्रभु के किये हुए विधानों में प्रसन्न रहना, सर्वत्र उनकी दया–ही–दया का दर्शन करना, उनके नाम, रूप, गुण और चरित्रों का चिन्तन करना–मन से प्रभु को पकड़ना है।

प्रभु के नाम एवं मन्त्र का जप, प्रभु के गुण और स्त्रोतों का पठन–पाठन, उनके नाम और गुणों का कीर्तन, प्रभु के नाम, रूप, गुण, प्रेम और प्रभाव का विस्तारपूर्वक उनके भक्तों में वर्णन करना, परस्पर भगवत्–विषयक ही चर्चा करना, विनयपूर्वक सत्य और प्रिय वचन बोलना– इत्यादि जो प्रभू के अनुकूल वाणी का व्यवहार करना है, वह वाणी द्वारा प्रभु को पकड़ना है।

जैसे पतिव्रता स्त्री पति के लिए ही पति के आज्ञानुसार काम करती है, वैसे ही प्रभु की आज्ञा के अनुसार चलना तथा प्रभु की इच्छा एवं आज्ञा के अनुसार निःस्वार्थ भाव से केवल प्रभु के लिये ही कर्तव्यकर्मों का आचरण करना–कर्म से प्रभु को पकड़ना है।

सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करते हुए यज्ञ, दान, तप, ब्रह्मचर्य आदि उत्तम कर्मों का आचरण करना एवं सब भूतों के हित में रत होकर सबके साथ विनय और प्रेम पूर्वक व्यवहार करना कर्मों के द्वारा प्रभु को पकड़ना है।

जो प्रेमपूर्वक अनन्यभाव से प्रभु को भजते हैं, उनकी प्रभु सब प्रकार से सहायता करते हैं।

अर्थार्थी पुरुष जिस प्रकार अर्थ के लिये कार्य में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही प्रभु के भक्तों को प्रभु के लिये प्रवृत्त होना चाहिए।

सर्वशक्तिमान् वासुदेव को ही अपना स्वामी मानते हुए, स्वार्थ और अभिमान को त्यागकर श्रद्धा और प्रेम भाव से निरन्तर उनका सर्वत्र चिन्तन करना अनन्य–भक्ति है।

भगवान् की भक्ति के प्रभाव से सारे दुःख, अवगुण और पापों का अत्यन्त अभाव हो जाता है, फिर मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र हो जाता है, उसकी सारी भूलें एवं संशय मिट जाते हैं, उसको सारा संसार भगवत्–रूप दीखने लग जाता है। उसकी वाणी और संकल्प सत्य हो जाते हैं, भगवान् की भक्ति के प्रताप से उसके लिये विष भी अमृत बन जाता है।

अनन्य भक्ति ही ईश्वर के दर्शन का सहज उपाय है।

भगवान् पुरुषोत्तम बिना ही कारण सब पर दया और प्रेम करने वाले परम सुहृद् हैं, शरणागतवत्सल हैं एवं दीनबन्धु हैं–ऐसे उनके स्वभाव को तत्त्व से जान लेने पर मनुष्य उनका भजन किये बिना नहीं रह सकता।

सगुणोपासना से प्रसन्न होकर भगवान् अपनी कृपा से भक्तों को तत्त्वज्ञान दे देते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य भगवत्तत्त्व में प्रवेश कर जाता है।

भगवान के साथ क्रीड़ा करने वाले गोपबालक और गोपबालाएँ तो परम अधिकारी हो गयीं। गीध और शबरी को भी उन्होंने योगिदुर्लभ गति दे दी। रीछ और वानरों को भी उन्होंने जगत्पावन बना दिया। ऐसे सुहृद् प्रभु को कैसे भूला जा सकता है।

भगवान् के राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्यादि सभी साकार–विग्रहों की पूजा साक्षात् भगवान् की ही पूजा है।

भगवत्स्मरण ही सबसे बड़ा साधन है और इसी में प्रधानरूप से सबको तत्पर हो जाना चाहिये। इस एक के सध जाने से सब कुछ अपने–आप सध जाते हैं और इस एक की कमी है तो सभी बातों की कमी है।

गीता का राजस ज्ञान सर्वभूतों में पृथक्–पृथक् भाव से देखने का निर्देश करता है, परन्तु ईश्वर को पृथक् मानकर जो उपासना की जाती है, उसे राजस नहीं कहता, क्योंकि यहाँ साधक ईश्वर को एकदेशीय न मानकर सर्वव्यापक समझता है और उसे सब भूतों में व्यापक देखता हुआ ही उसकी एक देश में पूजा करता है, केवल अपने को उससे पृथक् मानता है। श्रीभगवान् ने स्वयं आज्ञा दी है–

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।

(गीता 9/15)

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने तो इसकी विशेष प्रशंसा की है–

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि।। *(रा. च. मा. 7/119 क)*

जो भगवान् को तत्त्व से जान लेता है, वह फिर एक क्षण भी भगवान् से अलग नहीं रह सकता। उसे सदा-सर्वदा सर्वत्र भगवान् के दर्शन होते रहते हैं।

सब कुछ परमेश्वर का ही है, परमेश्वर खेल कर रहे हैं, परमेश्वर बाजीगर हैं, मैं उनका झूमरा हूँ, यों समझकर सब कुछ ईश्वर की लीला समझते हुए परमेश्वर के आज्ञानुसार आसक्ति और फल की इच्छा छोड़कर परमेश्वर की सेवा के लिये उन्हीं की प्रेरणा और शक्ति से प्रेरित होकर कार्य करता रहे।

यह समझकर बार-बार गद्‌गद होता रहे कि अहा! मुझ पर परमेश्वर की कितनी (अपार) दया है कि मुझ-जैसे तुच्छ को साथ लेकर भगवान् अपनी लीला कर रहे हैं।

अपने-अपने भाव और रुचि के अनुसार उसी सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्मा की शिव, विष्णु आदि किसी भी एक रूप की मानसिक या पार्थिव प्रतिमा को निमित्त बनाकर उन परमेश्वर के प्रभाव को समझते हुए श्रद्धा और प्रेम भाव से शास्त्र-विधि के अनुसार पत्र-पुष्पादि से उनकी अर्चना करना साकार परमेश्वर की पूजा है।

जो मनुष्य भगवान् के जिस नाम-रूप का उपासक हो, वह उसी को सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वगुणाधार, विज्ञानानन्दघन परमात्मा माने और उसी को सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में प्रकट होकर क्रिया करने वाला समझे। (उपासक के लिये ऐसा ही समझना परम लाभदायक और सर्वोत्तम है कि मेरे उपास्यदेव से बढ़कर और कोई है ही नहीं।) सब उसी का लीला-विस्तार या विभूति है। भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण, तत्त्वतः एक ही हैं। नाम-रूप का भेद है, वस्तुतत्त्व में कोई भेद नहीं। सब उपासनाओं का लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वर को इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्यों के बतलाये हुए मार्ग के अनुसार किसी भी नाम-रूप से उसकी जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्मा की उपासना है।

जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पति के अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओं की भी पति के आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचित आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्म से जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यश को प्राप्त होती है, इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम-रूप को अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभाव से भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवों की भी अपने इष्ट देव के आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ यथा-योग्य सेवा करनी चाहिये।

जो मनुष्य दूसरे के इष्ट देव की निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान या निन्दा करता है।

सिद्धयोग पत्रिका आय व्यय 2019–2020

आय	रुपये	व्यय	रुपये
बैंक मे पिछला जमा	573431	कागज व छपाई	175480
वार्षिक शुल्क	150770	टिकट व लिफाफे	150000
सहयोग राशि	81810	किराया	8000
बैंक ब्याज	25000	बाइन्डिंग	2850
		बैंक में जमा मय ब्याज (वर्तमान)	629681
	831011		831011

(पृष्ठ 62 का शेष)

ईश्वर के किसी भी नाम–रूप की निष्काम भाव से उपासना करने वाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। ईश्वर–प्राप्ति के पूर्व ईश्वर का यथार्थ स्वरुप किसी के भी चिन्तन में नहीं आ सकता।

चाहे जैसे हो, तत्त्व को समझकर उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिये। तत्त्व को समझकर की हुई उपासना ही सर्वोत्तम है। जो उन परमेश्वर को तत्त्व से समझ जाता है, वह उन्हें एक क्षण भी नहीं भूल सकता, क्योंकि सब कुछ परमात्मा ही है, इस प्रकार समझने वाला परमात्मा को कैसे भूल सकता है?

जो परमात्मा को सारे संसार से उत्तम समझता है, वह उन्हें छोड़कर दूसरी वस्तु को कैसे भज सकता है? यदि भजता है तो परमात्मा के तत्त्व को नहीं जानता।

भगवान् में चित्त लगाने से मनुष्य सारी कठिनाइयों से अनायास ही तर जाता है।

बिना प्रेम के निरन्तर चिन्तन नहीं होता और बिना श्रद्धा प्रेम होना कठिन है तथा वह श्रद्धा महान् पुरुषों के द्वारा भगवान के गुण, प्रेम, प्रभाव और रहस्य को समझने से होती है।

परमेश्वर का हर समय स्मरण न करना और उसका गुणानुवाद सुनने के लिये समय न मिलना बहुत बड़े शोक का विषय है।

भगवान् हर जगह उपस्थित हैं, परन्तु अपनी माया से छिपे हुए हैं। बिना भजन के न तो कोई उन्हें जान सकता है और न विश्वास कर सकता है। भजन से हृदय के स्वच्छ होने पर ही भगवान् की पहचान होती है। भगवान् प्रत्यक्ष है, परन्तु लोग उन्हें माया के परदे के कारण देख नहीं पाते। (समाप्त)

सहयोग राशि दाता के नाम पता सहित 2019–2020

1. जे.पी. गुप्ता, कोटा	1100—00
2. सुदेश रानी शर्मा, दिल्ली	3100—00
3. कुशेन्द्र पाल, बैरी	500—00
4. पुरुषोत्तम दास चौरसिया, नागपुर	1100—00
5. साहिद सिंह, ऊमरी जालौन	1100—00
6. अणिमा उपाध्याय, वाराणसी	500—00
7. शंकर लाल साहू, खणिया धाना	2100—00
8. ओंकार लाल श्रीवास्तव, जौनपुर	1100—00
9. पं. किशन शर्मा, रोहतक	500—00
10. सुनील कुमार सैनी, गुहाना	1100—00
11. विद्या देवी, मण्डी (हि.प्र.)	1100—00
12. मुरारी लाल, मण्डी (हि.प्र.)	500—00
13. विवेक शर्मा, मुम्बई	2100—00
14. कृष्ण मोहन उपाध्याय, वाराणसी	500—00
15. रघुवीर सिंह बहल, हरियाणा	1100—00
16. कर्मवीर, हरियाणा	500—00
17. मा. मंगलदत्त शर्मा, (शेखपुरा, खालसा)	500—00
18. सुरेन्द्र सिंह, कोहन्द	500—00
19. ईश्वर प्रसाद गोयल, दिल्ली	500—00
20. ललित देव शर्मा, कालका	2000—00
21. जय किशन शर्मा, भिवानी	500—00
22. नरेश जागंडा, भिवानी	1100—00
23. प्रदीप कुमार, भिवानी	500—00
24. चन्दन सिंह गुर्जर, दतिया	1000—00
25. इन्दौर मण्डल, इन्दौर	5100—00
25. रमन सक्सेना, प्रयागराज	500—00
27. राकेश श्रीवास्तव, प्रयागराज	500—00
28. सुरेश चन्द्र खरे, झाँसी	1100—00
29. चन्द्रशेखर गुप्ता, गंगापुर सिटी	500—00
30. रमेश चन्द मेहता, मण्डी (हि. प्र.)	1100—00
31. अवध नारायण सिंह, वाराणसी	500—00
32. जे.पी. सिंह, वाराणसी	500—00
33. अनिल मिश्र, नारायणपुर	1100—00
34. संजय सिंह (मुन्ना), वाराणसी	500—00
35. बृज किशोर शर्मा, वाराणसी	2100—00
36. जमुना मिस्त्री, वाराणसी	500—00
37. विश्वनाथ तिवारी, साहिबगंज	500—00
38. अमरसिंह ठाकुर, बिलासपुर	500—00
39. त्रिपुरारी पाण्डेय, बलिया	5100—00
40. विनोद पाण्डे एडवोकेट, वाराणसी	1100—00
41. भरत लाल शर्मा, भिवानी	5000—00
42. पं. किशोरी लाल शर्मा, दतिया	310—00
43. सुरेश, खुराना	200—00
44. सिद्धयोग मण्डल, इन्दौर	11000—00
45. हरिनारायण शुक्ल, जालौन	1500—00
46. किशोर सिंह, औरैया	100—00
47. आनन्द बहल, अकबरपुर	500—00
48. राम अकबाल त्रिपाठी, अकबरपुर	500—00
49. विनोद कुमार गोयल, हिण्डौन सिटि	500—00
50. राजेन्द्र कुमार गोयल, गंगापुर सिटि	500—00
51. विष्णु कुमार गोयल, करौली	500—00
52. दिनेश कुमार गोयल, करौली	500—00
53. सतीश चन्द्र शर्मा, गंगापुर सिटी	500—00
54. गोविन्द प्रसाद गुप्ता, गंगापुर सिटी	500—00
55. मदन मोहन अग्रवाल, गंगापुर	500—00
56. गुर्जर मल अग्रवाल, गंगापुर	500—00
57. कैलाश बड़वाद, गंगापुर सिटी	500—00
58. गिरधारी अग्रवाल, गंगापुर सिटी	500—00
59. घनश्याम मास्टर, गंगापुर सिटी	500—00
60. मनीष अग्रवाल (टीनू), गंगापुर सिटी	500—00
61. रोहित अग्रवाल (रोकी), गंगापुर सिटी	500—00
62. रितिक अग्रवाल, गंगापुर सिटी	500—00
63. आर्यन अग्रवाल, गंगापुर सिटी	500—00
64. मनसुख लाल गुप्ता, गंगापुर सिटी	500—00
65. रामबाबू शर्मा महन्त, गंगापुर सिटी	500—00
66. अनिल शर्मा, सवाई माधोपुर	500—00
67. मदन मोहन अग्रवाल, गंगापुर सिटी	1100—00
68. परमात्मा प्रसाद पाण्डे, गंगापुर सिटी	500—00
69. राजेन्द्र गुप्ता, गंगापुर सिटी	2100—00
70. मा. रघुवीर सिंह सहल, गंगाना	1000—00
71. कृष्ण मोहन उपाध्याय, वाराणसी	500—00
72. जगदीश प्रसाद गुप्ता, कालपी	2100—00
73. सुरेश चन्द्र गुप्ता, औरई	1100—00

श्री सद्गुरु वन्दना

वंदऊँ गुरुपद पदुमपरागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिय मूरिमय चूरन चारू, शमन सकल भवरुज परिवारू।।

सुकृत शंभुतन विमल विभूती, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जनमन मंजु मुकुर मल हरणी, कियें तिलक गुणगण वशकरणी।।

श्री गुरु पद नख मणि गण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोहतम हंस प्रकाशू। बड़े भाग्य उर आवहिजासू।।

उघरहिं विमल विलोचन हिय के। मिटहि दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित मणिमानिक। गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

दोहा

यथा सुअंजन आँजि दृग् साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहि शैल वन भूतल भूरि निधान।।

श्री गुरु मूरति चन्दमा सेवक नयन चकोर।
आठ पहर निरखत रहूँ श्री गुरु चरणन की ओर।।

श्रवन सुयश सुनि आयहुँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरत हरण शरण सुखद रघुवीर।।

शील क्षमा दया गुण सागर जामे रूप अपार।
सभी देव दर पर रहे सो विनवहुँ बारम्बार।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 JUNE - JULY 2020

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

मृत्योर्विभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृण्हाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख (मनुष्य) ! क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो ? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है ? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देता है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।